OCTOBER, 2001

ह्रीं

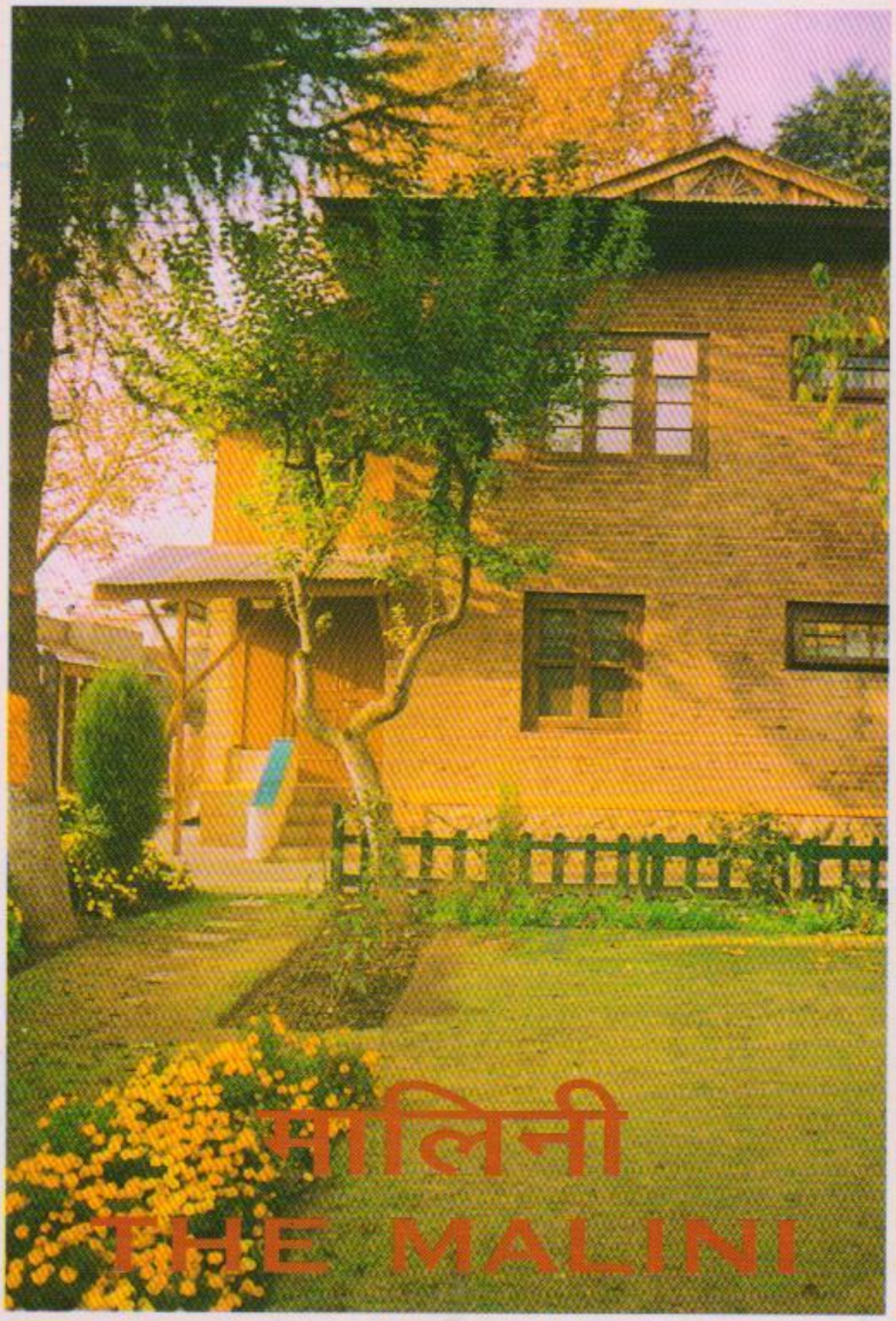

मालिनी
THE MALINI

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VII NO. III ISSUE XXVI
OCTOBER, 2001

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी।।

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar
New Delhi - 110 044
Tel. : 6958308
Telefax: 6943307

October, 2001
Issue Price : Rs.25.00
Yearly subscription : Rs.100.00
© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	7
2.	Four schools of thought in Kashmir Śaivism	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	12
3.	Spiritual Realism	*Dr. B. N. Pandit*	20
4.	आरोग्य प्राप्ति का उपाय	*सुश्री प्रभादेवी*	26
5.	कश्मीर शैवदर्शन में स्पन्द सम्प्रदाय	*प्रो० नीलकंठ गुर्टू*	29
6.	श्री तन्त्रालोकविवेके जयाद्या रुद्राः	*प्रो. मखनलाल कुकिलू*	34
7.	शैवदर्शन के वातायन से	*प्रो. नीलकंठ गुर्टू*	38
8.	कथामृत सद्गुरुदेव का		41
9.	शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष वास्तव में क्या है ?	*स्वामी लक्ष्मण जू महाराज*	47
10.	From Ashram Desk	*Administrative office*	48

सम्पादक की लेखनी से

●

ईश्वरस्वरूप सद्गुरु महाराज की १०वीं निर्वाण जयन्ती के अवसर पर मालिनी का यह अंक प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती का महत्त्व अद्वितीय है। इस मंगलमय दिवस पर अपने आराध्य इष्टदेव सद्गुरु महाराज की पुण्य स्मृति, भक्तों व साधकों के सारे मनोरथ कल्पलता की तरह, सिद्ध करने में सक्षम है। सद्गुरु महाराज की दयालुता का स्मरण करके साधकों का मन इस दिवस पर विशेष रूप से देदीप्यमान होकर दिव्य गुणों से अभिभूत होता है। माया के अन्धकार में भ्रान्त मार्गभ्रष्ट पथिकों को सद्गुरु देव का दिव्य स्वरूप इस दिवस पर अपनी अपूर्व ज्ञान ज्योति से मार्ग दर्शन करता है। स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित आज का दिवस समस्त संसार के प्राणियों को न केवल प्रकाश ही प्रदान करता है अपितु आध्यात्मिक शान्ति भी, इतना ही नहीं अपने श्री चरणों की शरण से आनन्द विभोर कर देता है, मंगलमय लोककल्याणकारी संकल्पों की सिद्धि प्रदान करता है, एवं अद्भुत ब्रह्मानन्द रसास्वाद का पात्र बनाता है। आज के दिन सद्गुरु महाराज के ध्यान करने मात्र से ही मनुष्य के त्रितापसन्तप्त हृदय को अपार शान्ति का अनुभव होता है, ऐसी सुन्दर छवि मन में छा जाती है कि समस्त भौतिक आकर्षण फीके प्रतीत होने लगते हैं और उस परमानन्द में मग्न हो एकाकार हो जाता है। मोहरूपी अन्धकार से चारों ओर से आच्छादित तथा काम, क्रोध, राग, ईर्ष्या आदि ग्राहों से व्याप्त मानव आज के ही दिन परम आराध्यका स्मरण करने मात्र से सिद्ध हस्त केवट को पाकर अपनी देहनौका दुस्तर भवार्णव को लांघने में किसी भी कठिनाई का अनुभव नहीं करता है। हे सद्गुरु महाराज ! आजके इस पुनीत पर्व की परमोपादेयता पर हमें दृढ़ विश्वास है कि इस अथाह भव जलनिधि में चारों ओर अथाह अज्ञान का साम्राज्य तथा वासनात्मक भीषण जन्तुओं के होने पर भी आपकी सामर्थ्यशालिनी स्मृति हमें मझधार में नहीं छोड़ेगी और इस तरह हमारी जीवन तरी अवश्य ही सरलता से किनारे लग जायेगी। हे गुरुदेव ! आप ही पूर्ण सामर्थ्यशाली हैं और हमारे एक मात्र आश्रय हैं–

जाऊँ कहां तजि चरण तिहारे,
केहि को नाम पतित पावन जग,
केहि अति दीनन पियारे।

इस सन्त वाक्य के आधार पर हे हमारे प्राणाधार सद्गुरु ! आपके दिव्य स्वरूप को त्याग कर हम कहां और भटकते फिरें, चारों ओर आशापूर्ण नेत्रों से देखते हैं, पर जहां दृष्टि जाती है उधर नैराश्य का साम्राज्य नजर आता है। अतः कृपा करके आज के पर्व पर अपने श्री चरणों का आश्रय निराश्रय जीवों को प्रदानकर अपनी महानता तथा उदारता का परिचय दें। आचार्य उत्पलदेव के अनुसार–

शिव शिव शम्भो शंकर !
शरणागतवत्सलाशु कुरु करुणां।
तव चरण कमल युगल-
स्मरणपरस्य हि सम्पदोऽदूरे। (शिव॰ स्तो॰)

जय गुरुदेव

ईश्वर आश्रम परिवार तथा दिल्ली केन्द्र के कर्णधार धन्यवाद के पात्र हैं कि थोड़े से समय में जिस अटूट आस्था और लगन से उन्होंने जो हाल ही में भजन सम्राट् अनूप जलोटा का भजन सन्ध्या का कार्यक्रम सम्पन्न किया वह उनकी कार्यकुशलता का प्रत्यायक है। धार्मिक संगीत प्रेमी भक्त जनता ने जिस उत्साह तथा अवधानता से इस कार्यक्रम का स्वागत किया वह अवर्णनीय है। इस भजन सन्ध्या की आयोजिका श्रीमती अंजना दर तथा आदरणीय श्री एस. पी. दर विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि इनके ही अथक परिश्रम से ईश्वर आश्रम ट्रस्ट का यह अभूतपूर्व प्रयास साकार हो सका। उल्लेखनीय है कि इस अवसर पर ट्रस्ट की ओर से विशेष पत्रिका का विमोचन श्री १०८ आदरणीय स्वामी गोकुलानन्द जी महाराज (सचिव श्री रामकृष्ण मिशन दिल्ली केन्द्र) के तत्त्वावधान में हुआ। इस समारोह के कार्यकर्ता स्वामी गोकुलानन्द जी महाराज के आभारी हैं कि उन्होंने इस समारोह की अध्यक्षता को स्वीकार करके सभी साधकों का उत्साह बढ़ाया। अपने प्रेरणाप्रद आध्यात्मिक लघु भाषण में इन्होंने यथासंभव अनुकरणीय तथ्यों को उजागर किया और विमर्श पीयूष राशि का सनातन प्रवाह प्रवर्तित किया।

ईश्वर आश्रम दिल्ली केन्द्र के अध्यक्ष श्री ए. के. गंजू जी ने कार्यक्रम आरंभ होने से पूर्व अपने अध्यक्षीय भाषण में इस केन्द्र की प्राथमिकताओं की ओर सभासदों और साधक श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया। इस केन्द्र की ओर से आरंभ होने वाले कार्यक्रमों में कश्मीर शैव दर्शन के प्रचार और प्रसार के कार्यक्रम को प्रथम स्थान देकर अध्यक्ष महोदय ने सद्गुरु महाराज की अभिलाषा को साकार रूप देने का दृढ़ संकल्प किया। सरिता विहार दिल्ली में निर्माणाधीन ईश्वर आश्रम परिसर तथा अमृतेश्वर भैरव मन्दिर की प्रगति का उल्लेख करते हुए श्री गंजू जी ने असंभावित बाधाओं पर संपूर्णतया

प्रभुत्व पाने का आश्वासन दिया और सद्गुरु प्रेमियों का मनोबल बढ़ाया।

प्रथम अक्टूबर सन् २००१ का दिन ईश्वराश्रम परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसी दिन से सद्गुरु महाराज की साहित्यिक, आध्यात्मिक तथा जीवन संबन्धित गतिविधियों का चित्रांकन 'इन्टरनेट' सुविधा के द्वारा न केवल भारतवासियों के लिए अपितु समस्त साधना, प्रेमी जगत के लिए सर्वसुलभ हुआ। आशा है कि इच्छुक जनता ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के इस कार्य से लाभान्वित होगी। इस उपलब्धि के क्रियान्वयन का श्रेय श्रीमती चेतना मुन्शी तथा उनके पति श्री देवेन्द्र मुन्शी को जाता है, जिन्होंने बहुत परिश्रम करके उपयोग्य सामग्री तैयार की और देश-विदेश में सद्गुरु महाराज की यशः पताका को फहराया।

ईश्वर स्वरूप महाराज के भक्तजनों, सत् शिष्यों और साधकों को यह पढ़कर प्रसन्नता होगी कि स्वामी जी महाराज की निर्वाण जयन्ती का समारोह ६ सितम्बर को धूमधाम से ईश्वराश्रम के तीनों केन्द्रों में मनाया गया। प्रधान केन्द्र श्रीनगर कश्मीर में पांच सौ से भी अधिक भक्तों ने महायज्ञ में सम्मिलित होकर पूर्णहुति में भाग लिया और अमृत प्रसाद को प्राप्त कर अपने को कृत्य-कृत्य किया। जम्मू केन्द्र और दिल्ली केन्द्र में भी अपार भक्त समुदाय ने पूर्णाहुति में भाग लेकर हुतशेष से स्व को लाभान्वित किया।

हम सब ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के आभारी हैं कि आर्थिक संकट के होने पर भी उन्होंने मालिनी पत्रिका के प्रचार और प्रसार के हित में मालिनी के वार्षिक दर में तीस रुपयों की कटौती करके इस अंक से एक सौ रुपया मात्र रखा। स्मरण रहे कि सद्गुरु महाराज की चिन्तन प्रक्रिया का प्रधान अंग होने के नाते, ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, मालिनी के प्रकाशन व्यय का एक तिहाई बोझ स्वयं उठाकर साधकों व पाठकों के कल्याणार्थ कोई कदम पीछे नहीं रखता है। अतः हम सब का यह परम कर्तव्य है कि प्रत्येक परिवार में मालिनी की सुगन्धित माला अपनी सुवास छितराकर साधकों का मन मोहित करे। हमें इसके लिए कटिबद्ध रहना है।

जय गुरुदेव !

प्रो० मखन लाल कुकिलू

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

(continued from last issue)

तस्मात् गुरोः प्रसन्नात्–

मातृकाचक्रसंबोधः॥ ७॥ शिष्यस्य भवति इति शेषः

Mātṛkācakra saṃbodhaḥ

Therefore when master is pleased, by his grace disciple gets the achievement of the knowledge of the wheel of Universal Mother.

श्री परात्रिंशकादि निर्दिष्टनीत्या– The way as described in *Śrī Parātrim-śaka* and in *Śrī Tantrāloka.*

अहंविमर्श प्रथमकला अनुत्तराकुलस्वरूपा– the Supreme I consciousness is called अहंविमर्शः,

प्रथम कला– its first move is **अनुत्तर–** unparalleled, there is no similarity, **अकुल स्वरूपा–** the form of undifferentiated totality, in first move He is अनुत्तर, being अकुल He does not observe here anything.

प्रसरन्ती आनन्दस्वरूपा सती– When He intends to create glory to external world also, He takes the formation of आनन्द, it is next movement.

In first state Śiva was अनुत्तर (unparalleled consciousness state) blissful state is digested in it, blissful state takes place when He wants to observe what He really is. This is 'अ' ।

इच्छेशन भूमिका भासन पुरःसरं– When He takes two more movements, इच्छा and ईशन, **भूमिका–** States, put forth. The state of Lord Śiva, after the existence of blissful state आनन्द is इच्छाशक्ति-the energy of will. There is desire and nothing else. The energy of will is there just to admire his own nature and possessing of it. That is represented by the letter "इ"- this is subtle state of will in the theory of vowels then He takes another movement, that is the gross state of will -ई । In this gross state of will He not only admires his nature but He wants to own it.

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

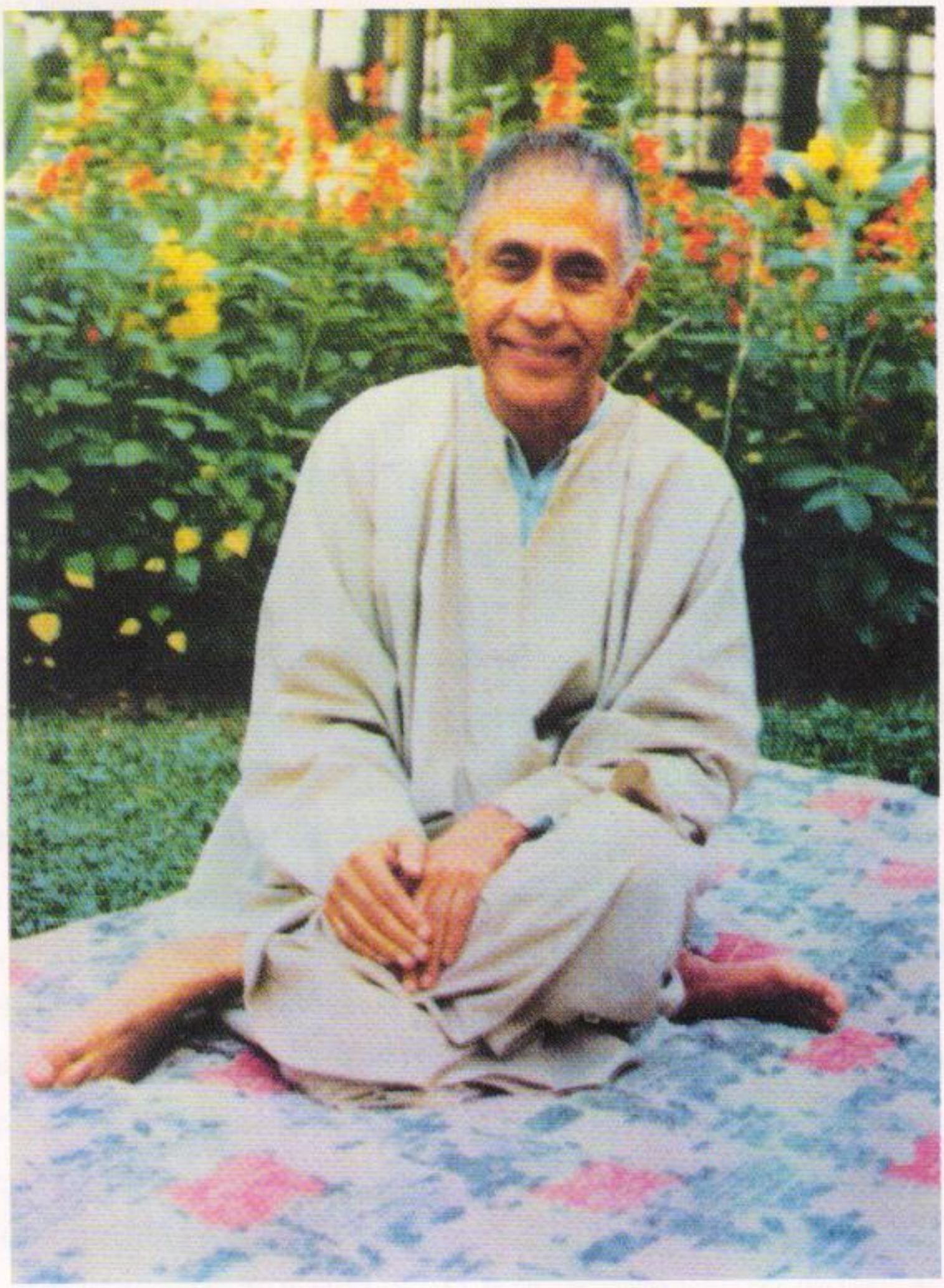

आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

ज्ञानात्मिकामुन्मेषदशां ज्ञेयाभासासूत्रण आधिक्येन च ऊनतां प्रदर्श्य– Then another movement comes, when He wants to possess the nature of self by ईशना; after that He finds that this whole universe is existing in his own nature, it is full of all consciousness and all bliss. It is represented by letter "उ"। Then what happens next? Then another movement comes to external world that is ज्ञेयाभास। He wants to examine what universe is existing in self of mine with state of ज्ञान। As soon as He wants to observe the differentiated things of nature in the self then there all consciousness and all bliss takes him to move in another way by that this bliss and consciousness is lessened. It is not lessened but apprehension takes place at that stage. That apprehension of lessening of his bliss and consciousness is represented by letter "ऊ"। **इच्छामेव द्विरूपां विद्युत् विद्योतनकल्प तेजोमात्र रूपेण–** by lessening here He does not move to another state but diversion of movement takes place. He does not go to external world. This diversion of movement takes place in four ways. Two states are intention and next two states are apprehension. Intention to go back to my own nature and confirmation of that intention that it has to be taken back. Just first stage is **विद्युत–** lightening and then second is विद्योतन observing of that lightening. This state is represented by the letters of 'ऋ' and 'ॠ'। Mere 'ऋ' represents the intention of carrying again in internal world and "ॠ" represents the confirmation **स्थैर्यात्मना च एषणीयेन रञ्जितत्वात् र-ल श्रुत्या आरूषितेन–** then intention takes its establishment, when this whole process of nature is so established there are another two movements more with 'ऋ' and 'ॠ'। The beginning of establishment and confirming of that establishment. This state is represented by the letters "ऌ" and "ॡ"। 'ऌ' represents the establishment of carrying this whole process inside and 'ॡ' represents the way carrying this whole nature. The letters 'र' and 'ल' are heard as sounds. **रञ्जितत्वात–** coloured, **आरूषितेन–** affected by, **अतएव–** Therefore, **स्वप्रकाशात्मीकृत– मेयाभासत्वत: अमृतरूपेण–** It is felt this whole process of universality carrying to is made one to his own nature. Hence these four states are called अमृतबीज by the Sanskrit language grammarian *Pāṇini*, because they are full with nectar. There is no sight

of moment to external world.

मेयाभासारूषणमात्रतश्च बीजान्तर प्रसवासमर्थतया षण्ठाख्य बीज चतुष्टयात्मना रूपेण प्रपञ्च्य– They are affected only by resemblance of objectivity, as nothing can be created by these as creating of universe is taking complete end here. It is said by *Pāṇini* also that these four letters "ऋ" "ॠ, ऌ and ॡ" represent the eunuch (षण्ठ) state of Lord Śiva, where Lord Śiva does not possess the courage to produce. प्रोक्तानुत्तर आनन्द, **इच्छा संघट्टेन त्रिकोणबीजं–** As previously explained about अनुत्तर, आनन्द and इच्छा, He infuses the power of creating consciousness in his own nature that is अनुत्तर and आनन्द। He infuses his power of creation in his will also and creates another world and that world is the energy of action. In this energy of will, energy of knowledge and energy of action all the three are existing. It is why it is called **त्रिकोण–** tringle the letter represented by it is 'ए'। In Śārada script 'ए' is written like 'त्रिकोण'। Its one point is will one point is knowledge, and one point is action. Thus त्रिकोणबीज is the first state of energy of action. **अनुत्तरानन्दोन्मेषयोजनया च क्रियाशक्त्युप-गमरूपमोकारं–** second state of energy of action is represented by the letter "ओ"। It is called "ओ" just to confirm that I am going to create this, though energy of will has gone in the eunuch state yet I will create. This is because of the power of greatness of consciousness and bliss– अनुत्तर and आनन्द when अनुत्तर–"अ", आनन्द–"आ", are combined with 'उ' i.e. उन्मेष– ज्ञानशक्ति– energy of knowledge they infuse the power of knowledge. अनुत्तर and आनन्द infuse the creative power in will, then in knowledge, by that another state of क्रियाशक्ति– energy of action, comes into existence at that time. This क्रियाशक्ति is represented by the letter "ओ"। **प्रोक्त एतत् बीजद्वय संघट्टेन षट्कोणं शूलबीजं च–** When अनुत्तर–"अ" and आनन्द–"आ" are combined with "ए" and "ओ" it takes the formation of षट्कोण– ऐ– hexagonal and शूलबीज– त्रिशूलबीज– "औ" because इच्छा, ज्ञान and क्रिया are vivid in this. Lord Śiva is vividly existing in **शूलबीज इच्छा ज्ञानशक्ति व्याप्त पूर्ण क्रिया शक्ति प्रधानत्वात् शक्तित्रय संघट्टनमयं प्रदर्श्य–** it is why all these three energies of Lord Śiva are found vividly in this 4th state of energy of action, **इयत्पर्यन्त विश्वैक वेदनरूपं बिन्दुमुन्मील्य, युगपद् अन्तर**

बहिः विसर्जनमय बिन्दुद्वयात्मानं उद् दर्शितवती, अतएव अन्तर्विमशनेन अनुत्तर एव एतत् विश्वं विश्रान्तं दर्शयति,– upto this the embodiment of Lord Śiva is explained totally. But there are more states, the letters 'अं' and ":" (विसर्ग) to be explained. This whole universe beginning from चित्शक्ति and ending in **क्रियाशक्ति–** the most vivid क्रियाशक्ति। The whole universe is no universe at all in other words the whole universe is expansion of his own nature. Nothing is created at all. It is all glory of his own nature called as creation. In fact nothing this sort of confirmation is represented by the letter "अं" vividly. There is only one point. After doing all this expansive state of activity, the whole active world is dissolved in one point and nothing is created. You must know. If you grow, if you are old, if you die, that all is your own expansion. There is no change no death. Expansion of your growing alone. This is represented by the letter "अं"। And after that when nothing is created then what is that which happens which is just like creation. You feel just like being created. Lord Śiva when observes this way He feels nothing is created. When He observes that He feels everything is created. Then another state comes into existence that state is represented by the letter "अः"। There are two dots in this letter. In first dot you see nothing is created and in another dot you see everything is created. Therefore the glory of his own I God consciousness shows that the whole universe is resting within the state of अनुत्तर। This is called अन्तर्विमर्शन as per this philosophy.

बहिर्विमर्शेन तु कादि-मान्त पञ्चक पञ्चक अ-इ-उ-ऋ-लृ शक्तिभ्यः पुरुषान्तं समस्तं प्रपंचयति– When we perceive that अनुत्तर state of Lord Śiva from external point of view, then it is observed that He is spreaded in the whole universe i.e. after creating energies of nature He creates the state of visargaḥ. By this external awareness, group of five different elements (तत्त्व)। He gets prominence in each group of five letters from 'ka' consonant to "म" through अ, इ, उ, ऋ, and लृ Śaktis i.e. through चित्, आनन्द, इच्छा ज्ञान and क्रिया Śaktis. Thus five groups of consonants known as क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, and प वर्ग i.e. from क to भ म twenty five elements starting from lowest inferior element "क"-पृथ्वी to 'म'– पुरुषः are expressed. **एकैकस्याश्च शक्तेः पञ्चशक्तित्वमस्ति, इत्येकैकतः पञ्चकोदयः–**

each of these अ, इ, उ, ऋ and ऌ Śaktis has five energies. These five energies rise from each one. For example चित्शक्ति has आनन्द, इच्छा, ज्ञान and क्रिया, आनन्द शक्ति has चित्शक्ति, इच्छा, ज्ञान and क्रिया so on. Thus all the five energies are existing successively in five energies side by side. So **पञ्चक पञ्चकं=** 5X5 = 25 means twenty five consonants from 'क' to 'म' express twenty five elements. For example –

	Consonent	Elements	
Group **क** वर्ग =	क	पृथिवी (Earth)	Five gross
From **अ** Śakti =	ख	जल (Water)	elements
	ग	अग्नि (Fire)	पंचमहाभूत
	घ	वायु (Air)	
	ङ	आकाश (Sky)	
Group **च** वर्ग =	च	गन्धतत्त्व (Smell)	Five subtle
From **इ** Śakti =	छ	रसतत्त्व (Taste)	elements
	ज	रूप (Form)	पंचतन्मात्र
	झ	स्पर्श (Touch)	
	ञ	शब्द (Sound)	
Group **ट** वर्ग =	ट	उपस्थ (Anus)	Five organs of
From **ऋ** Śakti =	ठ	पायु (Urethera)	action
	ड	पाद (Feet)	पंचकर्मेन्द्रिय
	ढ़	पाणि (Hand)	
	ण	वाक् (Speech)	
Group **त** वर्ग =	त	घ्राण (Nose)	Five organs of
From **ऌ** Śakti =	थ	रसना (Tongue)	cognition
	द	चक्षु (Eyes)	पंच ज्ञानेन्द्रिय
	ध	त्वक् (Skin)	
	न	श्रोत्र (Ears)	

... to be continued

FOUR SCHOOLS OF THOUGHT IN KASHMIR ŚAIVISM

By Swami Laksmana Joo Maharaj
Translated from Kashmiri into English by Shri S.P. Dhar

This presentation of the subject is based on one of the several discourses given by Acharya Shri Swami Lakshman Joo during 1972-1984 to his disciples, who, besides his Kashmiri Pandit pupils included several westerners and Indian scholars. The discourse presented here is originally in Kashmiri, which is a dialect without a script of its own. The Ishwar Ashram Trust, founded by Shri Swami Ji Maharaj in 1984, has on its cards, an ambitious plan to release these lectures in the form of appropriate publications in English as well as in Hindi and in the form of audio and video cassettes, depending on the encouragement and support received from the public.

Long after Sage Durvasa was first initiated into Śaivism by Lord Shiva on Mount Kailash, the Lord felt the need of explaining it in still greater detail in order to make it easily understandable to larger masses of spiritual seekers of varying intellectual levels and occupational persuits. This caused Lord Shiva to re-incarnate himself in the form of four successive masters in Kali-Yuga namely (1) Somanandanatha, (2) Airakanatha, (3) Vasugupta and (4) Shambunatha[1]–the Guru of Abhinava gupta, the last in the lineage of Masters of Kashmir Shaivism (also known as Trika philosophy) of the mediaeval times. All these masters assumed human forms only for our benefit, for our spiritual enlightenment which alone guarantees liberation from the vicious circle of transmigration and total deliverance from sufferings attending thereon.

Shri Somanandanatha was the first and the foremost to teach the PRATYABHIJNA School of Thought, the highest within the Trika system of philosophy (more popularly known as Kashmir Shaivism). This system is best suited to seekers with higher intellectual level and purity of mind. PRATYABHIJNA System rests basically on the principle of RECOGNITION – recognition of perfect identity of the individual soul i.e. Jiva with the Highest Ultimate Reality i.e Shiva. Jiva is none other than the Peerless Shiva Himself who, in his state of exuberance of Bliss (Ananda) has, of his own Sovereign Will (Swatantrya) manifested Himself in the multitude

of forms, each with distinctly different characteristics in terms of powers as well as functions, Shiva in his manifest form (in Immanence) assuming limited powers and functions characteristic of Jiva, retaining at the same time his Transcendental Nature

The PRATYABHIJNA system does not advocate the methods and means of Vikalpa Kheya (eradication of thought constructs or withdrawal of senses of perception from their respective objects of perception) nor does it endorse the adoption of techniques which lead to the expansion of powers of perception in terms of their range and depth to experience thereby their innate universal character. Instead the individual needs directly to recognise his true universal nature i.e. his identity with the highest Reality and To Be IT. Being It implies directly to recognise his true nature i.e. Supreme Consciousness and to instantaneously resume the powers as well as functions characteristic of Lord Shiva. The former consist of Lord Shiva's (i) Chit Shakti (Supreme Consciousness) (ii) Ananda Shakti (Infinite Bliss) (iii) Ichha Shakti (Sovereign Will), (iv) Jnana Shakti (Omniscience) and (v) Kriya Shakti (Omnipotence), whereas the latter, comprise of His Five Universal Functions (Pancha Kretya) namely (a) Creation of the phenominal world (Srishti), (b) Sustenance thereof (Sthiti), (c) its Dissolution (Samhara), (d) the Concealment of His true nature (Pidhan) and (e) the Revealing of His true nature (Anugraha) e.g. oneness of the manifest world of objects and the transcendental aspects of his Supreme Consciousness. In other words it amounts to remain stay-put in the full awareness of one's real nature (Pancha Kretya Anusaran). Once that, happens, you are there. There is nothing else to do. If every moment you are aware of what you are doing, you are there. You are to closely watch your own thought process and get used to identify the moments when a new thought - construct arises (initial act of creation), how long it continues (sustenance) in terms of its depth and detail and when it terminates (that is identifying the moment of its dissolution- Samhara) i.e. when in the process of perceiving, the subjective awareness disappears and when the same reappears. In each and every act of this world one has to closely watch the moments " of replication of the five-fold acts (Pancha Kretya) of Lord Shiva. In course of time, one will realize that he has not suffered any loss of glory in terms of God-

Consciousness, be it lordly powers or universal functions. This is taught in Pratyabhijna School of Kashmir Shaivism. This is Shambhava Upaya. This school does not recognise Shakta-Upaya nor Anava-Upaya. It transcends all means and methods. Pratyabhijna rests on the basic principle of recognition of[1] absolute identity of man and God. All means and methods are redundant here[2]. The perfect identity between the two (i.e. Jiva – the limited being or the soul-in-bondage and Paramatman) leaves no room for any impurities in the so-called) Jiva who is none other than Shiva Himself (malasya ko satta keedrakh va tasya nirodakah) The so-called impurities have no independent existence to be able to cause any impediments.

While explaining the Pratyabhijna Shastra[3], founded by his own Guru Shri Somananda, in his own commentary called Vimarshini, Shri Utpala Deva quotes a typical illustration of Pratibijna as described here. Think of a young maiden girl of marriageable age, whose marriage has already been fixed with someone possessing suitable family background, educational achievements and other enviable qualities. She has, without seeing or meeting the would-be spouse, developed passionate love for him. Both may even be in correspondence through letters or through personal messengers. Imagine a situation when, by chance, the two meet somewhere (like a place of pilgrimage or any public place). Even though the man of her dreams stands right before her and vice-versa neither recognises the other, at least on the basis of their respective assessments through correspondence or through verbal descriptions of their physical personalities and qualities of head and heart by someone else. The meeting turns out to be just ordinary without yielding any joy or excitement characteristic of the meeting between two lovers. Suddenly someone knowing both and their anticipated relationship, turns up on the scene and reveals their respective identities. The whole scenario changes dramatically. Their hearts are flooded with joy of love; their bodies and mind experience surges of deep satisfaction and each rejoices the occasion like never before. Utpala, in his Vimarshini deduces that likewise in the case of an earnest seeker, often his own spiritual teacher provides him the necessary inspiration at the spur of the moment, which makes him identify, and enjoy those blessed occurrences of boundless peace and

transcendence. That is how the principle of Pratyabhijna operates. This very principle has been explained in Pratyabhijna Shastra of Kashmir Shaivism by Shri Somananda. This approach to reality is, however, applicable to only those spiritual seekers, who have the highest ability and need not resort to any particular Upayas (means or methods). For such people, however, who need resort to one or the other specific Upayas because they are relatively less qualified in terms of purity of mind and intellect, they are recommended to adopt other means or paths.

For the next below grade of Sadhakas, i.e. those not qualified for Pratyabhijna, Lord Shankara has assumed the form of KULA SYSTEM. The Kula system propounds the thought of totality of energies, which in turn, is based mostly on Shambhava Upaya and to a lesser extent on Shakta Upaya, the former being more predominant. Briefly this system advocates the technique of 'Yoga in Action'. This approach of Kula system does not envisage retreating into solitude like chosen places of meditation, shutting of all lights, resorting to Pranayams (practising of breath control) and thereby enjoy induced moments of quietitude popularly known as Samadhi. The school of Kula system was first established by Macchandanatha for those not suited out right for Shambhava Upaya, let alone qualified for Pratyabhijna.

Kula stands for totality of energies, For example when a person is busy listening to someone' voice or say music, he cannot simultaneously talk to some one else nor can he undertake other activities like discerning seriously and performing other tasks simultaneously with same efficiency. The Kula system precisely teaches how one can deploy all his organs of action and senses of perception at the same time with maximum efficiency as is characteristic of Lord Shiva, who is all pervading. The tongue will continue talking as well as tasting food and analysing the same, smelling various fragrances and distinguishing each from the other through his nose, perceiving various objects with his eyes at the same time and keep track of other events like touch through his skin and sense of tactility - all at the same time. This involves mastering the art of maximizing the efficiency of all sense perceptions and organs of action simultaneously with full awareness of one's real nature. That ensures establishment in Yoga of Action. Remember the quote "Sarvah Shakti cheytasa darshanat

yah yoga patheyna madhyatah'. The Kula system thus trains a seeker to overcome the limitation of using one channel of energy for one purpose at a time thus leading to deprivation of his inherent freedom of will, knowledge and power of action – all contrary to his true nature. The Kula system, on the contrary teaches how exactly to use all faculties at the same time and thereby release his Swatantrya Shakti to accomplish anything he desires, while remaining centered in his self awareness.This approach was initially found by Shri Macchandanatha and later on propounded in greater depth and detail by Acharya Shambunatha, the Guru of Bhagavatpada Shri Abhinava Gupta Acharya. This system of Kula technique ultimately leads one to mindless state (Unmana bhava) where his sovereign will operates at universal level with no consideration or concern for any individual desire. They just do not exist there. Once established in that exalted state of consciousness, one experiences perfect control over totality of energies (Shakti-chakra). This practice leads him to shed off all his limitations and to restore his full mastery of totality of energies. At his mere will he has everything at his command. Naturally one does not harbour any individual or personal desire; and universal desire is no desire. Instead it is cosmic in character and as such is mere reflection of God Consciousness. At such an advanced level, this yogi becomes qualified for Shambhava Upaya, a step lower than Pratyabhijna established yogi. This technique is also known as Vishvavyapi Yoga.

Yet lower than the above is the Krama system of thought suited to still lower grade of spiritual seekers. Krama system essentially rests on the principle of succession or sequence, also called Krama theory. This involves investigation into how and what causes the supreme consciousness to descend to the level of limited being (i.e. jiva or soul-in-bondage) and his retrieval i,e, to his ascending back to his original state of glory viz. the ultimate state of Reality. The principle of succession or sequence is threefold in nature and it operates in terms of space, time and form[5]. In other words the Krama system rests on these three concepts, those of space (desha), time (kala) and form (rupa) of the object of perception. This system is also known as Kali Shastra.

The Krama system advocates deep concentration on all three concepts. For example take the case of our own breathing. One inhales a

breath and then he exhales the same. One has to mark how long he breathes in (pooraka), how long it takes to exhale (rechaka) and how long is the in-between pause (kumbhaka). This needs unbroken awareness on the part of the seeker to discern fully the natural duration of the incoming (apana vayu) and outgoing (prana vayu) breath and the duration times of the two in-between pauses at the commencement and termination of each of the two viz. inhalation and exhalation, which together constitute one full cycle of breath. In particular, one has to develop perfect awareness of the pause time (sandhi) which provides the peep hole to the realm of pure consciousness marked with intense peace and tranquility. This practice in Krama system ultimately leads one to the state of transcendence (akrama padavi). Akrama pada is synonymous with Lord Shiva's State of Transcendence. It is that state which is beyond space, time and form. Once one enters into that state, he virtually crosses the barriers of space,time and form. So one needs to fully understand the concepts, practice concentration on each concept, analyse their nature in terms of their range (desha), duration (kala) and repeatedly recognise the pause time thereby gaining entrance into the Ultimate Reality i.e. Shiva. This was first taught by Airakanatha, also known as Sivanandanatha -the author of Shri Kalika Stotra.

The Krama system is, of course, very ancient and it preceeds historically the period during which Pratyabhijna Shastra was revealed by Shri Somananda and later on elaborated by Shri Utpala Deva in his Vimarshini on Shiva Drishti.The technique of Krama is based partly on Anava Upaya and partly on Shakta Upaya. The Anava State lasts throughout the initial period of practice when the seeker resorts to concentration on space, time and form. Once he starts overstepping them, he automatically enters into Shaktopaya. When he gets firmly established in spacelessness, timelessness and formlessness, he is further elevated and becomes qualified for Shambhava Upaya. There is yet another school of thought in Kashmir Shaivism that is ranked as fourth in order of merit viz, the SPANDA SCHOOL OF THOUGHT. It comprises of Shakta and Anava Upayas. The Spanda school of thought rests on the principle of movement -movement forming the basis of revelation of one's nature–any kind of movement, not necessarily physical movement. Consider the case of a

hand at rest. Even when it does not move it is still invested with the power of moving. If that power were not there, it would be a dead man's hand. It is obvious that though not moving externally, the power of motion exists and some movement is still going on within the veins of the hand. We are all aware that during the interval of two successive heart beats, how fast the blood rushes throughout our capillary system, though not perceived by our naked eyes. Imagine it traverses through 72,000 major and minor veins by the time the heart beats once. Thus the soul reveals its power of movement. This gets more and more clearly revealed through appropriate methods of concentration on different forms of movements making it possible to ultimately discern the changeless state of Spanda Shakti. One such illustration, often observed by us, is provided by an electric fan. Once it is switched on, the blades start rotating and at increased speeds, even though they rotate so quickly, yet the objects behind the moving blades remain distinctly clear, the blade in motion allowing full view of the still objects in the background. The Spanda system thus lays emphasis on acceleration of the sense perceptions involving movement so intensely that the underlying changeless (movementless) state of Spanda comes into clearer and still clearer relief. The one-pointedness of concentration constitutes the key to our discernment of the changeless state of Spanda right amidst the process of intensely fast occurring perceptions. In the case of the fan at maximum speed we clearly see only the space in which the blades move, certainly not the blades. Besides we hear the sound caused by the continuous air displacement as well as the mechanical sound of the equipment. Thus more intense the effort of concentration the greater the chances of one's entrance into yogic trance which is the state of motionlessness-characteristic of Lord Shiva, the highest state of quietitude (nispandata).Thus all forms of motion (activity) like the process of sense perceptions and activities through our organs of action will ultimately get transformed into that sublime state of motionlessness and hence unbroken awareness. This system of Spanda thought was evolved by Shri Vasu Gupta, who himself got it from Lord Shiva through the Sutras engraved on the huge boulder named Shankar Pala.

FOOTNOTES

1. Initially Shri Macchandanatha established the Kula school but the credit of synthesizing and integrating it with other schools of Shaiva thought goes to Shri Shambunatha, who initiated, inspired and guided Acharya Abhinava Gupta into the Kula System. Our revered Master Rajanaka Shri Lakshman Joo Maharaj is regarded as the last doyen of this system by most of the modern scholars of Kashmir Shaivism. Kashmir Shaivism has penetrated to that depth of living thought where diverse currents of human wisdom unite in a luminous synthesis" thus claims Rabindra Nath Tagore. His holiness Swami Sivananda of Divine Life Society would often hail Swami Lakshman Joo as the Lion of Kashmir Shaivim and would have him address his own disciples on the tenets of Kashmir Shaivism. Shaivism seemed to hold special appeal to Swami Vivekananda also, who during his visit to Kashmir. visited the great Shaiva Guru Swami Ram Ji Maharaj at latter's Ram Trika Ashram at Fateh Kadal, Srinagar, Kashmir. Our own beloved and revered Master, Shri Swami Lakshman Joo Maharaj was first initiated into Shaiva Yoga by this very Shaiva Guru, though in later years Shri Swami Mehtab Kak Ji Maharaj took over the charge of Shri Lakshman Joo on his Guru's advice.

2 The great Abhinava Gupta asserts in Shri Tantra Sara 'Upaya jalam na shivam prakashayate, ghatenal kim bhati sahasra deedyetih'

3 Shiva Drishti

तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतस्तन्व्याः स्थितोऽप्यन्तिके
कान्तो लोकसमान एवमपज्ञातो न रन्तुं यथा।
लोकस्यैष तथानवेक्षितगुणः स्वात्मापि विश्वेश्वरो
नैवालं निजवैभवाय तदियं तत्प्रत्यभिज्ञोदिता॥

4 Just as an object of love, who has been brought to the presence of a slim lady by her various entreaties, cannot give her any pleasure, though he may stand before her so long as he is not recognised and therefore not distinguished from commonman, so the self of all which is the Lord of the world, cannot manifest its true glory so long as its essential nature is not recognised. Hence the means of its recognition has been dealt with.

5 Space, time and form thus constitute the three referal points of interpreting all human experiences which are infinitely diverse in character. It is only the confluence or the convergence of these three that resolves all differentiated experiences into single unitary experience of God-Consciousness known by several names e.g. ultimate reality. Maheshwara, heart or core truth, self-realization, supreme consciousness, transcendence, ultimate bliss, etc.

SPIRITUAL REALISM

Dr. B.N. Pandit

The Saiva philosophers of Kashmir assert that the self alone has an absolute existence and is itself its proof. Each and every living being is always aware of his existence as it is always being felt by him. No living being requires the help of any aids in feeling his existence. He has not to depend even on his senses, mind and intellect for such purpose, because even when all such aids of knowledge vanish in a state of dreamless sleep, the self feals itself as a witness to such state. Had it not existed there as a witness, how could it afterwards recollect the void experienced there-in. Thus the self is always self-existent, self-evident and self-conscious. The *Turyā* or the fourth state of animation can faintly be experienced by all of us in some high pitch of an emotion and some other such psychic states provided we are able to use a supervigilant attentiveness called *Avadhāna* in Śaivism. It can be experienced vividly by a yogin in a trance. The experience of *Turyā* state reveals to a Śivayogin the truth that he exists everywhere and in every thing and that every thing exists in him. Moreover, it helps him to realize the truth that he is pure *Prakāśa*, the self evident psychic lustre, having pure *Vimarśa* or self awareness as its essence, He feels that he transcends the whole phenomenal existence and shines yet as the whole phenomenon.

Śaiva philosophers, relying on their experiences of the *Turyā* state, assert that consciousness is a sort of stir. It is neither a physical stir nor a psychic one but a spiritual stir. Every living being feels in him an urge that shines in the form of a will to know and to do and, on such account, he is always inclined to know and to do. Such urge can be noticed even in a healthy baby who is just born.

Every living being knows his own self. Knowing is itself an action. Doing cannot occur without knowing and neither of them can be possible without willing. Willing is a sort of an extrovertive stir of the above mentioned natural and subtle urge of consciousness. (S.D.I-9,10,24,25). Such stir appears as a vibrative volition known in Kashmir Śaivism as *Spanda*. It is neither any physical vibration like that of sound or light nor

any mental movement-like that of desire, disgust, passion etc. It is a movement-like spiritual activity of consciousness which vibrates simultaneously outwardly and inwardly on account of its own such essential nature. The inward and outward movements of *Spanda* shine as subjective and objective awareness of I-ness and this-ness respectively. It is by virtue of such double edged nature of *Spanda* that the pure self is experienced in both its transcendental and universal aspects by yogins in the *Turyā* state. *Paramaśiva*, the transcendental absolute, is the real self shining through His own lustre of pure consciousness in the state known as *Turyātīta* – the state that transcends even the *Turyā*, There He shines as "I" which transcends the concepts of both transcendency and emanence. It is 'I' and 'I' alone. It is the infinite and absolutely perfect monistic 'I'. It consists of that superior psychic lustre of pure consciousness which is known as *Prakāśa* or its psychic luminosity and *Vimarśa*. or its self awareness and is termed in Śaivism as pure *Samvit*. Such 'I' is not the egotic 'I'. The egotic 'I' revolves round either deha, the gross physical body or buddhi, the fine mental body or *prāṇa*, the subtler life force or still subtler finite and individual consciousness of the self, termed as *Śūnya* or void of dreamless sleep. But the 'I' taking itself as *Samvit* and Samvit alone, is absolutaly pure and is the real self of every living. Since it has the pure stir of *Spanda* as its eseential nature, it manifests itself in both the nomenal and phenomenal aspects through the introvertive and extrovertive movements of *Spanda*. It is known in Śaivism as Śiva and Śakti in its two aspects of transcendency and universality respectively. The whole phenomenon does exist in *Parama-Śiva* but does not shine there in its phenomenal form. It exists there in the form of the divine potency of *Parama-Śiva* and shines there as pure consciousness of monistic character. There it is pure *Samvit* and that alone. A whole plant exists in a seed in the form of the seed alone. A seed is a seed by virtue of its capacity and potentiality to appear in the form of a plant. The plant lies thus in its seed in the form of the potency of the seed. Similarly the phenomenon lies in *Parama-Śiva* in the form of his divine potency. How could a plant sprout out of a seed if it were not existent in it. The whole phenomenon has in the same way an eternal existence within the infinite *Samvit* of *Parama-Śiva* and exists there as His Śakti because He has the

power to appear in the form of all phenomena. (S.D.III-2,3). Śiva and Śakti are the two names given to one and the same Absolute when thought over in His two aspects of eternal changelessness and the manifestation of the universal appearances. Such position of perfect unity is known in Śaivism as the stage of Śakti because everything exists and shines there in the single form of Śakti, the divine power of the Absolute. The unmanifest existence of the phenomenon states to appear objectively at the start of phenomenal evolution, brought about by *Parama-Śiva* in the manner of a reflection through His divine playfulness. At the initial stage of its such manifestation it shines faintly inside the psychic lustre of pure I-consciousness and appears there as a faintly shining this-ness. It is just like the sprouting state of a seed. Both the seed and the sprout appear there, but both appear as one inseparable whole. That is the state of unity in diversity in which the phenomenal existence is a reality and is not the son of a barren woman. It is known as the state of *Vidyā*.

The stage of *Vidyā*, like that of Śakti, is also charged with the constant stir of *Spanda*, and by virtue of such stir, it appears outwardly as Māyā, the stage of clear and distinct manifestation of diversity in which I-ness and this-ness shine as two different entities. Such manifestation of objective existence at the stage of Māyā, is not based on the imagination of any finite being nor any flux of mind as conceived by idealistic thinkers. It is not a dream based on one's imagination. Imagination is the function of mental apparatus but the basic objective existence of mere undiversified this-ness becomes manifest only through the outward stir of Spanda of the absolute consciousness shining at the stage of *Vidyā* and reflecting the inner divine powers at the stage of Māyā, without any help from mental apparatus. Such outward manifestation of the inwardly existent phenomenon is termed in Śaivism as *Kalpanā* while imagination is *Kalpanā* which is the result of the flutter of mental apparatus but *Kalpanā* is just and objective manifestation of a thing which is already existent within the subject and which shines there in the form of I-ness, having identity with the subject. The absolute subjective existence, shining as 'I' at the stage of *Śakti*, is the finest and the purest existence of all phenomenon and the gross objective existence appearing as 'this' at the stage of *Māyā*, is the impure one. Its existence in the intermediate state

of pure *Vidyā*, the stage of unity in diversity, is counted as pure when compared to the gross objective existence in the state of complete diversity. It is counted as impure only in comparison with the absolute subjective existence at the stage of perfect unity. *Parama-Śiva*, the Absolute God, projecting out the show of his divine playfulness, manifests the play of descendence from the stage of *Śakti* to those of *Vidyā* and *Māyā*. In the second part of such play He manifests an ascension from the stage of *Māyā* to those of *Vidyā* and *Śakti*. He appears to be always descending and ascending through such stages of existence in countless form. But, while manifesting constantly such play, He does not diverge even a bit from His changeless Absolute existence shining as pure, infinite and potent I-consciousness, because all such play is manifested by Him in the manner of a reflection. His divine powers become reflected outwardly and objectively inside the pure lustre of His absolute consciousness and that appears as the manifestation of the stages of *Vidyā* and *Māyā*, along with the multifarious varieties of subjects and objects shining in them. He just wills to appear as finite phenomena and appears like that. Then He wills to recognize His real and a phenomenal finite being recollects his divine character as well as his absolute identity with God. All subjective beings, the whole objective phenomenon and all means of knowing and doing are nothing but the materialized will of the Absolute God. It is not basically the creation of any individual or universal mind because its manifestation starts long before the creation of mental apparatus. Its existence is not therefore idealistic in character. It is absolutely real at the stage of *Śakti* where it shines as Absolute subjective consciousness. It enjoys reality at the stage of *Vidyā* where it appears as the body of the infinite consciousness because the correct knowledge is its form at such stage. Then it is real at the stage of *Māyā* where it shines in its objective reality. had it not been real, it would not have served any lasting results and beings would not have been after it. Besides, the phenomenal existence serves as a common target of the activities of all beings, while an idealistic existence in dreams etc. is absolutely individualistic in its character. Such character of universal utility proves the objective phenomenon to be real. Each and every living being takes it to be real. Such thinkers who propagate idealism and say that the world is unreal like a dream or mental hellucination do very

often deceive themselves and the whole world. The invisible effect of such viewpoint of nonexistencialism has been one of the important causes of the dark period of the history of Indian nation resulting in slavery, poverty, misrule and many other miseries for the last several centuries. So long as we live in *Māyā*, we have to take all its multifarious varieties as real, otherwise we shall be deceiving ourselves.

Only some non-existent concepts like horns of a hare, son of a barren woman, flowers in the sky, etc., are taken in Śaivism as unreal in the mundane activities of day to day life because neither do such things exist actually in the physical world, nor do these serve any purpose. But even such things are accepted as real in poetic imagination as these can serve there some poetic objects. The physical universe has not been accepted in Śaivism as absolutely real or *Paramārthasat*, because it is a mere manifestation shining in the manner of a reflection. It is a created reality which has an end also. Besides, in reality we do not have any dealings with any physical objects residing outside the psychic lustre of our individual consciousness. We deal with objects while these shine inside our knowledge and our knowledge is a manifested form of our consciousness. It is a reflection of our knowing power or *Jñāna-śakti*, appearing inside the mirror of our understanding sense, It shines there in the form of ideas with word-images known as *Vikalpa Jñāna*. Ideation is formed by us with the help of our mind and understanding and only such ideation illuminates clearly an object. our conceptional and definite knowledge has its scope in the field of ideation alone. Knowledge without ideation is termed as *Nirvikalpa*. It does not throw any clear right either on the name or the form of any object. All names and forms are provided to the knowledge of an object by our ideation. All clear and definite knowledge of an object is therefore based on ideation and all mundane transactions are conducted with the help of ideation formed by us in accordance with conventional traditions regarding the relation between words and their meanings. Ideation is thus the base of all mundane knowledge that is definite in character. The whole phenomenal existence shines in such *Vikalpa* knowledge. Its existence outside such knowledge cannot be proved even if it is inferred to exist even while not shining in the knowledge with ideation because such inferencial knowledge also

consists of ideation. Ideation is termed either as *Vikalpa-buddhi* or as *Saṃvṛti*. The latter term is more popular in Buddhist philosophy. The phenomenon enjoy thus an existence based on *Samvṛti* and is therefore counted as *Samvṛti-satya*, that is the truth based on *Samvṛti*. Truth is thus of two kinds, *Paramārtha-satya* or absolute truth and *Saṃvṛti-satya*, or truth based on mental ideation. Both such varieties of truth are truth as asserted by Abhinavagupta who says like this:–

"Saṃvṛtir Vikalpa-buddhis, tadvaśāducatāṃ saṃvṛti-satyatvaṃ, satyatvasyaiva tu prakaras tat." (I.pr.V.II-2-4). Therefore the universe is real at all the three stages of Śakti, Vidyā and Māyā, though it shines there in three different ways.

Utpaladeva asserts that all phenomena are real both inwardly in the pure I-consciousness and outwardly in the field of Māyā. Thus says he :

Cinmayatvevabhāsānam antareva sthitis tathā; Māyayā bhasamānānāṃ bāhyatvād bahira pyasau. (I.Pr.1-8-7).

... to be continued

Moral beauty is the basis of civilisation

Intelligence, will-power and morality are very closely related. But moral sense is more important than intelligence. When it disappears from a nation the whole social structure commences to crumble away. Moral activities have not received the importance they deserve. Moral sense must be studied in as positive a manner as intelligence. Of course, such researches cannot be undertaken in a laboratory. Field work is indispensable. But without any doubt, moral activities are located within the domain of scientific observation. When we encounter the rare individual whose conduct is inspired by a moral ideal, we cannot help noticing his aspect. Moral beauty is an exceptional and very striking phenomenon–one never forgets it. This form of beauty is far more impressive than the beauty of nature. It gives to those who possess its divine gifts a strange, an inexplicable power. It increases the strength of the intellect. It establishes peace among men. Much more than science, art, and religious rites, moral beauty is the basis of civilisation.

ॐ गुरवे नमः

आरोग्य प्राप्ति का उपाय

सुश्रीप्रभादेवी

अनेकशक्तिः संघट्टप्रकाशलहरी तनुः।
शुद्धसंवित् शिवः पायाद्विभुः श्री परमेश्वरः।।

अनेक शक्तियों के होने से जिनका स्वरूप प्रकाशमय बना है ऐसे निर्मल संवित-स्वरूप शिव व्यापक मोक्ष लक्ष्मी संपन्न परमेश्वर (हम सबों की) रक्षा करें।

निर्विकल्प अवस्था में जब कभी पूर्व स्मृति उभर आती है तो वह भी आह्लाद प्रदायक होती है। ईसवी सन् १९८२ की वार्ता है। प्रातः स्मरणीय गुरुवर्य श्री ईश्वर स्वरूप जी महाराज को दिल का दौरा पड़ने से पेस मेकर लगाने दिल्ली जाना पड़ा। मैं तथा पूजनीय देवी शारिका जी ईश्वर आश्रम में ही रहे। हम दोनों गुरुवर्य के सकुशल आश्रम लौटने के लिए देवी देवताओं से प्रार्थना करते रहते थे। हम प्रतिदिन नव-ग्रहों का पाठ तन्मयता से करते थे। हमारी प्रार्थना को नव-ग्रहों ने सहर्ष स्वीकार किया। फल यह हुआ लगभग दो मास के बाद गुरुदेव सानन्द स्वस्थ होकर अपने आश्रम में पधारे। मैं आज पाठकों के हितार्थ उन्हीं नव-ग्रहों के श्लोक मालिनी में दे रही हूं। जो भी इनका पाठ नियम-पूर्वक श्रद्धा सहित करेगा उसकी मनोभिलाषा भगवान शंकर अवश्य पूर्ण करेंगे, ऐसी धारणा है:–

नमः सूर्याय सोमाय मंगलाय बुधाय च।
गुरु शुक्र शनिभ्यश्च राहवे केतवे नमः।।

सूर्य-ध्यान

जपा कुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।। १।।

(मैं) 'जपा' नाम वाले फूल के समान सुंदर कश्यप ऋषि के पुत्र, अति तेजस्वी, अंधकार के शत्रु, सभी पापों को समाप्त करने वाले, सूर्य भगवान् को प्रणाम करता हूँ।

चंद्रमा-ध्यान

दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसंभवम्।
नमामि सततं सोमं शंभोर्मुकुटभूषणम्।। २।।

दही, शंख और ओस के समान सफेद, क्षीर-सागर से उत्पन्न तथा भगवान् शंकर के ताज का अलंकार बने हुए चन्द्रमा को मैं सदा नमस्कार करता हूं।

मंगल-ध्यान

धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च मंगलं प्रणमाम्यहम्॥ ३॥

पृथ्वी से उत्पन्न बिजली की कौंध के समान प्रकाशयुक्त, राजकुमार जिनके हाथ में शक्ति नाम का अस्त्र है, ऐसे मंगल देवता को मैं प्रणाम करता हूं।

बुध-ध्यान

प्रियङ्गु कलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं नमामि शशिनः सुतम्॥ ४ ॥

'प्रियङ्गु' नाम वाली लता के समान श्याम वर्ण वाले, अप्रतिम (कोई जिसके समान नहीं) रूपवाले, शांत स्वरूप वाले तथा सुखद गुणों से युक्त चंद्रमा के पुत्र, बुध देवता को मैं नमस्कार करता हूं।

बृहस्पति-देवता

देवानां च ऋषीणां च गुरुं कांचन संन्निभम्।
बन्धुभूतं त्रिलोकज्ञं प्रणमामि बृहस्पतिम्॥ ५॥

देवताओं त्था ऋषियों के गुरु, सोने के समान पीले रंग वाले मित्र के समान उपकार करने वाले तीन लोकों (भूः, भुवः, स्वः) के मर्म को जानने वाले, बृहस्पति देवता को प्रणाम करता हूं।

शुक्र-ध्यान

हिमकुन्दतुषाराभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्र प्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥ ६॥

बर्फ, कुन्द नामक फूल तथा ओस के समान सफेद, राक्षसों के श्रेष्ठ गुरु, सभी शास्त्रों का व्याख्यान करने वाले, भृगु ऋषि के सन्तान शुक्र देवता को मैं नमस्कार करता हूं।

शनैश्चर-ध्यान

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं महाग्रहम्।
छायामार्तण्डसंभूतं प्रणमामि शनैश्चरम्।। ७।।

नीले काजल (सुरमे) के समान कृष्ण-वर्ण को धारण करने वाले, सूर्य-पुत्र, प्रभावशाली, भयंकर-ग्रह, सूर्य की छाया से उत्पन्न, धीमी गति वाले शनि देवता को मैं प्रणाम करता हूं।

राहु-ध्यान

अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसंभूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्।। ८।।

मैं उन आधे शरीर वाले, महाबलवान, चंद्र और सूर्य का (ग्रहण के समय) ग्रास करने वाले, तथा सिंहिका नाम वाली राक्षसी से उत्पन्न राहु ग्रह को प्रणाम करता हूं।

केतु-ध्यान

तमालनालसंकाशं तारकाग्रह मस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्।। ९।।

तमाल वृक्ष के डंठल के समान काले वर्ण वाले, सभी तारा मंडल में मस्तक की भांति सुशोभित, भयंकर, तथा रुद्र के समान अति प्रभावशाली केतु ग्रह को मैं प्रणाम करता हूं।

Apology

The Chief Editor of *Mālinī* apologizes for inadvertently publishing some papers presented at the seminar on *Sunya-Purna – Pleroma* held at Sarnath/Varanasi in December 1999, organised by the Abhishiktananda Society. These papers were not intended for publication in their present form since they will be published in book form revised by the respective authors.

ॐ नमः शिवाय

कश्मीर शैवदर्शन में स्पन्द सम्प्रदाय

प्रो० नीलकंठ गुर्टू

अज्ञान में पड़े हुए लोगों का उद्धार करने की इच्छा से अनुग्रहैक मूर्ति भगवान शंकर ने नवीं शताब्दी के आस-पास काश्मीर निवासी वसुगुप्त सिद्ध को स्वप्न की दशा में स्वयं दीक्षित करके, महादेव पर्वत की तलहटी (वर्तमान दाछीगाम) में विद्यमान एक उपल (वर्तमान शंकर पल) पर उत्कीर्ण, अद्वैत शैव-सिद्धान्त के सूत्रों का पता बता दिया। साथ ही यह आदेश भी दिया कि वह वहाँ से उन में निहित रहस्य को अन्धकारावृत्त लोगों को समझाकर उनका उद्धार करें। सिद्ध वसुगुप्त ने भगवान के आदेशानुसार वहां से उन सूत्रों का संग्रह किया और श्री भट्टकल्लट आदि सद्-शिष्यों को उनका अध्ययन भी कराया। साथ ही स्वयं उन सूत्रों में वर्तमान शक्तिमान और शक्ति के पूर्ण अभेद-सिद्धान्त का सार इक्यावन कारिकाओं में संग्रहीत भी किया। आगे चलकर इन्हीं इक्यावन कारिकाओं को स्पन्दसूत्र या स्पन्दकारिका की संज्ञा दी गयी।

श्री भट्टकल्लट ने पर तत्त्व की विमर्श प्रधानता के सिद्धान्त को अपना कर इन स्पन्द-कारिकाओं पर अपनी वृत्ति लिखी और स्पन्द सम्प्रदाय का शिलान्यास किया। इस प्रकार शैवदर्शन का दूसरी बार पुनरुद्धार हुआ।

प्राचीन काल में भी प्रतिकूल विचारधाराओं के प्रचण्ड प्रहारों से इसका उच्छेद हो चुका था। उस काल में भी भगवान आशुतोष ने अन्धकार में पड़े हुए लोगों का उत्थान करने की इच्छा से श्रीकण्ठ की मूर्ति धारण करके दुर्वासा ऋषि के द्वारा इसका पुनरुद्धार किया था।

इन इक्यावन स्पन्द सूत्रों या स्पन्द कारिकाओं के लेखक के बारे में मतभेद है।

कुछ आचार्य, जिनमें डा० बलजिन्नाथ पण्डित और उनके गुरुवर्य श्री अमृतवाग्भवाचार्य भी सम्मिलित हैं का मत है कि श्री भट्टकल्लट ही मूल सूत्रकार हैं। इसके प्रतिकूल श्री सद्गुरु ईश्वर स्वरूप जी महाराज, अपने गुरुक्रम से चली आ रही परम्परा के आधार पर श्री वसुगुप्त को मूल सूत्रकार मानते हैं। प्रस्तुत लेखक इस विषय में इतना नम्रनिवेदन कर सकता है कि यदि श्री भट्टकल्लट के अपने पद्य-

अगाधसंशयाम्भोधिसमुत्तरणतारिणीम्।
वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रां तां गुरुभारतीम्।।

(स्पन्दकारिका वृत्ति ५२वां पद्य)

के अर्थ पर निष्पक्षता से विचार किया जाए, तो सहज में ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वास्तव में सूत्रकार होने का श्रेय सिद्ध वसुगुप्त को ही प्राप्त है। मूल स्पन्दकारिकाओं की संख्या 51 ही है। इससे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है। उल्लिखित कारिका श्री भट्टकल्लट ने मूलसूत्रों पर वृत्ति लिखने के अनन्तर, गुरुभारती की वन्दना करने के लिए अपनी ओर से जोड़ दी है।

(मैं उस गहरे संशयरूपी समुद्र के पार ले जाने में नौका के समान विचित्र अर्थों और पदों वाली अनूठी गुरुदेव की वाणी को प्रणाम करता हूँ।)

स्पन्द क्या है ? शिवशक्तिसामरस्य ही, सदाशिव तत्व से लेकर पृथिवी तत्व तक, सारे जड़-चेतनात्मक विश्व का आधारभूत एवं शाश्वत यथार्थ है। स्पन्द शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों में इसी को चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता भी कहते हैं। इस सामरस्य में शिव प्रकाश है और शक्ति उसका विमर्श है। शिव या शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श यह केवल कहने-सुनने के लिए मात्र औपचारिक द्वित्व है।

वास्तव में यह नीरक्षीरात्मक सामरस्य है। विमर्श प्रकाश की स्पन्दता है और स्पन्दता होने के कारण प्रकाश का प्राण है। यदि प्रकाश में प्राणभूत स्पन्दता न हो तो प्रकाश की सत्ता ही क्या ? शक्तिहीन शिव की कल्पना शव की कल्पना से कुछ अधिक नहीं है। फलतः प्रकाशरूप शिव की निजी और अभिन्न अहंविमर्शरूपा शक्ति ही स्पन्द है। स्पन्दता ही शिव का स्वातन्त्र्य है।

शक्ति के बिना शिव को अपनी प्रकाश रूपता का पता नहीं चलता और शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व ही संभव नहीं। शक्ति रहित शिव शिव नहीं शव है। शिव और शक्ति असल में एक ही परमतत्व के दो स्वभावों के नाम हैं। वह तत्व शिव और शक्ति का समरस रूप परम शिव है। शक्ति के उत्तरोत्तर परिस्पंद से परमशिव के भीतर विद्या-तत्व और मायातत्व का प्रतिबिंब सा बन जाता है। विद्या भेदाभेद का और माया पूरे भेद का अवभासन करती है। माया शिव को पुरुष रूप में प्रकट करने के लिए पांच आवरणों की सृष्टि करती है—कला, राग, अशुद्ध विद्या, काल और नियति। इन्हीं को कंचुक भी कहते हैं।

त्रिक दर्शन में वेदांत जैसे शुष्क ज्ञान और वैष्णव दर्शन जैसी सरस भक्ति का पूरा सामंजस्य है। त्रिक दर्शन का अद्वैत, वेदांत के अद्वैत से, अलग है। कश्मीर शैवमत के अनुसार परमेश्वर में कर्तृत्व है, लेकिन वेदांत के ब्रह्म में ऐसा नहीं है। शैवों का शिव चेतन होता है और सृष्टि, स्थितिं और संहार के प्रति उन्मुख बना रहता है लेकिन वेदांत का ब्रह्म स्पंदहीन और शांत बना रहता है। वह सृष्टि आदि भी वस्तुतः नहीं करता।

शंकराद्वैत में केवल ज्ञान ही प्रधान है और परावस्था में भक्ति का कोई स्थान नहीं है। लेकिन कश्मीर शैवमत में ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य हर स्थान पर है। संसार की पहेली को सुलझाने के लिए शंकर वेदांत में अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या का आश्रय लिया गया है, लेकिन कश्मीर शैव दर्शन में इस प्रकार की अविद्या को दोषों में गिना गया है। वहां की परिपूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धांत से ही इस पहेली को सुलझाया गया है। ईश्वर की स्वतन्त्र्य शक्ति से बिना बिंब के ही जगत के रूप का प्रतिबिंब स्वतः आभासित होता है। माया भी आकस्मिक नहीं, एक आभास है जिसका कारण शिव का स्वातंत्र्य है। उसे आत्मा की इच्छा से परिगृहीत रूप ही माना गया है। कश्मीर शैवदर्शन में इच्छायोग अर्थात् शाम्भवोपाय को ज्ञानयोग से बड़ा माना गया है। शंकर के वेदांत में शाम्भवोपाय का उल्लेख भी नहीं मिलता।

दार्शनिक मीमांसा–शक्ति के पांच मुख हैं–चित्त,आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इनमें से चित्ता और आनन्दता शिव के साथ इस रूप में घुली-मिली है कि इनका मात्र कल्पनात्मक पार्थक्य भी संभव नहीं है। इच्छा शक्ति यद्यपि इनका ही स्थूल रूप है तथापि शिव भूमिका पर उसका वैसा रूप नहीं है जैसा पशु भूमिका पर है। शिव पशु के समान, स्थूल रूप में, न कभी आम खाना चाहता है न कभी पेड़ ही गिनना चाहता है। शैव-मान्यता के अनुसार, उस भूमिका पर इच्छा का रूप चित्ता और आनन्दता का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभ्युपगममात्र (शिवत्व में इन दोनों की वर्तमानता का स्वीकार) है। इस अभ्युपगम में भी बहिर्मुखीन उन्मुखता न होने के कारण, इच्छा भी शिवत्व में ही विश्रान्त अवस्था में वर्तमान है। शेष रह जाते हैं ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति। इन्हीं दो रूपों में शाश्वत शाक्त-स्पन्दना, पति भूमिका और पशु भूमिका पर युगपत् ही स्पन्दायमान है। फलतः ज्ञातृता और तदनुकूल (सब कुछ जानने और करने का स्वातन्त्र्य-पूर्णकर्तृत्व) यही स्पन्द शक्ति का स्वरूप है और यही उसमें स्वातन्त्र्य है। इसी स्वातन्त्र्य के द्वारा वह गृहीता-भूमिका, ग्रहण-भूमिका और ग्राह्य-भूमिका पर युगपत् ही स्पन्दायमान है।

शक्ति के पांच मुखों का यह अभिप्राय नहीं है कि यह पांच प्रकार की भिन्न-भिन्न शक्तियां हैं। वास्तव में शक्ति एक ही है। इसका मूलरूप स्वतंत्र चित्ता (चित्-मात्ररूपता) है। यह शक्तिमान से अभिन्न है। चित्ता का ही स्थूलरूप आनन्द, आनन्द का ही स्थूलरूप इच्छा, इच्छा का ही स्थूलरूप ज्ञान और ज्ञान का ही स्थूलरूप क्रिया है। शिव सृष्टि, स्थिति संहार, अनुग्रह और पिधान पांच कृत्य करता है, क्योंकि उसमें ज्ञान है; वह जानता है क्योंकि उसमें इच्छा है, वह चाहता है, उसमें आनन्द है; वह आनन्दमय है क्योंकि वह पूर्ण चैतन्य है। फलतः चित्ता ही शिव है और शिव ही चित्ता है। केवल शिव शक्तिसामरस्य है।

स्पन्द सूत्रों में वर्णित आत्मंसत्ता–संसार-भूमिका पर किसी भी प्राणी विशेष या वस्तु विशेष में, उत्पत्ति से लेकर अन्त तक, प्रायः एक ही रूप में रहने वाले, किसी विशिष्ट गुण या प्रकृति को स्वभाव कहा जाता है। इस भूमिका पर, प्रत्येक पदार्थ के विशिष्ट एवं अन्य पदार्थों से भिन्न होने के कारण यह स्वभाव भी विशिष्ट एवं विभिन्न प्रकार का होता है। अतः इसको समष्टि नहीं अपितु व्यष्टिरूप ही कहा जा सकता है। इसके प्रतिकूल आध्यात्म-भूमिका पर स्वभाव या स्वस्वभाव शब्द से उस सामान्य रूप मौलिक तत्त्व का अभिप्राय है जो विश्व के प्रत्येक जड़ अथवा चेतन पदार्थ में एक ही मौलिक सत्ता के रूप में अनूस्यूत होकर अवस्थित है। वह तत्त्व उन विभिन्न वेद्य-पदार्थों के प्रकाशन, स्थिति और संहार का मूल कारण होने से कर्तृभूत-सत्ता है और स्वयं कार्यभूत प्रमेयता के स्पर्शमात्र से भी बहुत दूर है। वह, निरवच्छन्न, अकालकलित और स्वतंत्र होने के कारण विशुद्ध चिन्मात्र रूप है। वही तत्व प्रस्तुत स्पन्द सम्प्रदाय में वर्णित आत्मसत्ता है और स्वरूप अथवा स्वस्वरूप जैसे अन्य पारिभाषिक शब्द भी उसी की अभिव्यक्ति करते हैं।

यदि शैव दर्शन के मूलमंत्र पूर्ण-अभेद (नदुनंसपपिमक ।कअंपजपेउ) के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो यही तथ्य समक्ष में आता है कि विश्व के कण-कण में अथवा विश्वोत्तीर्ण रूप में, मात्र स्पन्दमयी आत्मसत्ता की विद्यमानता है। उसको अवस्था विशेषों की सीमाओं में बन्द करना महती भ्रान्ति है। परन्तु इसके बिना और कोई रास्ता भी नहीं, क्योंकि संसार भूमिका का निर्वाह भेद दृष्टि को अपनाने के बिना हो ही नहीं सकता है। भेद तो अभेद का ही बहिर्मुखीन विकास है; अतः इसको कैसे झुठलाया जा सकता है ? परतत्त्व शक्तिमान होने के कारण, अपनी निर्बाध एवं स्वतंत्र शक्तिविजृम्भणा के द्वारा, स्वयं ही कर्तृ-अवस्था और कार्यता-अवस्था में अवभासमान होकर, विश्व के उत्थान और पतन की क्रीड़ा करता रहता है। इन दो अवस्थाओं में से कार्यता अवस्था स्वरूप विकास और कर्तृता अवस्था स्वरूप विश्रान्ति है। कार्यता केवल उपाधि है। क्योंकि यह कर्तृता के प्रकाश पर उपजीवित है और बोध-प्राप्ति के तत्काल ही विलीन हो जाती है। इसके प्रतिकूल कर्तृता अवस्था, नित्योदित-बोधरूपा होने के कारण, शाश्वत वास्तविकता है। आत्म कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों के लिए कर्तृता उपादेय है और कार्यता हेय है। भारत के लगभग समूचे दार्शनिक संसार में स्वतंत्र कर्तृता को 'अहंता' और परतंत्र कार्यता को 'इदन्ता' शब्दों से अभिव्यक्त किया जाता है।

स्पन्द शास्त्र की मान्यता के अनुसार मूलतः पूर्ण चेतन स्वभाव, ऊपर से नीचे तक, एक ही प्रमाता है। स्वतंत्र और आनन्दमय होने के कारण वह दो रूपों में अवस्थित है। पहला पति प्रमाता और दूसरा पशु प्रमाता। पति-प्रमाता के रूप में वह, विश्वमय विकास

का विश्वोत्तीर्ण रूप है। अतः इस रूप में उसके अवान्तर भेदों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पशु-प्रमाता के रूप में वह विश्वोत्तीर्ण का विश्वमय विकास है। अतः उसके भेद, उपभेद और आकार-प्रकारात्मक वैचित्र्य इतने हैं कि उनकी गणना मानव की संकुचित कल्पना में नहीं आ सकती है। पंचभौतिक काया को धारण करने वाला प्रत्येक जङ्गमरूप या स्थावररूप प्राणी 'पशु प्रमाता' है। प्रत्यभिज्ञा के आचार्यों ने अहन्ता और इदन्ता के उतार-चढ़ाव के आधार पर, विश्व को, शुद्ध मार्ग और अशुद्ध मार्ग में बांट कर, इन पर अवस्थित प्रमाताओं के विभिन्न एवं विविध स्तरों का गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया; परन्तु स्पन्द-शास्त्रियों के मतानुसार शिव-प्रमाता के अतिरिक्त अन्य सारे प्रमाता हैं, चाहे वह सदाशिव-कोटि या पृथ्वी-कोटि पर अवस्थित हों। हां, उन्होंने केवल इनमें पाये जाने वाले बोधात्मक संकोच या विस्तार के आधार पर इनको अबुद्ध, बुद्ध, प्रबुद्ध और सुप्रबुद्ध इन चार श्रेणियों में बांट कर रखा है।

प्रत्येक मनुष्य को हृत्मण्डल में निगूढ़ रूप में अवस्थित ज्ञानक्रियात्मक स्पन्द शक्ति के वास्तविक स्वतंत्र एवं सामान्य रूप का अपरिचय ही, उसके लिए पाश है। संसार की भूमिका पर सारे जड़ या चेतन पदार्थ सामान्य शक्ति के विशिष्ट रूप हैं। विशिष्ट होने के कारण आभास में भिन्न और पारस्परिक भिन्नता के कारण परस्पर सापेक्ष हैं। यह पारस्परिक सापेक्षता ही भौतिक द्वन्द्वात्मकता है। दूसरे शब्दों में यूं कहा जा सकता है कि विश्वात्मक एकत्व को भूलकर वैयक्तिक अनेकत्व की गहराइयों में खो जाना ही एक ऐसा बन्धन है जो जीवात्मा के साथ जोंक की भान्ति चिपका रहता है। इस जोंक से पिंड को छुड़ाना धीर पुरुषों का काम है। स्पन्द सम्प्रदाय के गुरुओं की मान्यता के अनुसार आत्मशक्ति के वास्तविक स्वरूप की विस्मृति ही बन्धन है और सच्ची स्मृति ही मुक्ति है। इस स्मृति को ही शास्त्रीय शब्दों में तुरीयारूप शाक्त भूमिका का साक्षात्कार होना कहते हैं॥

श्रीतन्त्रालोक विवेके श्रीजयरथाचार्य पादैः स्तुताः योनिसमुद्भूताः जयाद्याः रुद्राः

भाषानुवादक
प्रो. मखनलाल कुकिलू

(गतांक से आगे)

श्रीतन्त्रालोक विवेक के सप्तदश आह्निक से सम्बद्ध "बलप्रद" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "त"

निजशक्तिजनित कर्म प्रपञ्च संचार चातुरी विभवम्।
भवतरण बलप्रदतां समावहन्तं बलप्रदं नौमि॥

निजशक्तिजनित –अपनी शक्ति से यथासंभव उत्पन्न हुए, कर्म प्रपंच संचार–विभिन्न कर्मों के अनुष्ठान का अत्यधिक संचार-चातुरीविभवं-विचित्र ज्ञान की परिनिष्ठा से संपादित नाना ऐश्वर्यों का संभार भव-सागर जैसा अगाध है, तरण बलप्रदतां–उसे पार करने के लिए शक्ति प्रदान करने के भाव को समावहन्तं–धारण करने वाले "बलप्रदं"–बलप्रदं नामक रुद्र को, नौमि–प्रणाम करता हूँ।

निजशक्ति –स्वातन्त्र्य शक्ति के उद्रेक से, कर्म प्रपंच से आणवमल, मायीयमल, और कार्ममल अभिप्रेत है।

भवतरण –संसार सागर को पार करने के लिए,

बलप्रदतां –क्षमता प्रदान करने के भाव को,

बलप्रदं –बलप्रद नामक रुद्र को।

बलप्रद शब्द अन्तिम पंक्ति में दो बार प्रयुक्त हुआ है। प्रथम बलप्रद का तात्पर्य है शक्ति या क्षमता प्रदान करने का भाव और दूसरे बलप्रद का तात्पर्य बलप्रद नामक रुद्र है। स्वात्मशक्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न कर्म प्रपंच का अत्यधिक संचार, तथा चेतना की चातुरी से उद्भूत अपार सिन्धु-सा वैभव, हे बलप्रद नामक रुद्र ! आपकी दया से ही पार करने में समर्थ हैं। ऐसे क्षमता प्रदान करने वाले रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ। इस रुद्र का मन्त्राक्षर "त" है। इसका चिन्तन व मनन साधक को भवसागर से उत्तीर्ण होने की क्षमता प्रदान करता है।

श्री तन्त्रालोक के अष्टादश आह्निक से सम्बद्ध "बलावह" नामक रुद्र की स्तुति

तथा उसका मन्त्राक्षर "थ"–

ऋतधामानमनन्तं बलावहं तं बलावहं बन्दे।
जगदिदममन्दमखिलं स्वमहिम्ना योऽनुगह्णति।।

ऋतधाम –अभ्यस्त तत्त्व पारग गुरु द्वारा परामन्त्र विद्या से दीक्षित शिष्य, शुद्ध तत्त्वन्यास स्थिति से संपन्न होके सत्यधामभागी होता है। इस सत्यधाम को देने वाला बलावह रुद्र ही होता है।

अनन्त –अन्तरहित। शिवतापत्ति दीक्षा अनन्त है। इसका अधिष्ठाता बलावह रुद्र है।

बलावहं –अत्यन्त शक्तिशाली, अर्थात् नाना प्रकार की सिद्धियों को देने में यह बलावह रुद्र पूर्ण सामर्थ्यवान् है।

बलावहं तं –उस बलावह नामक रुद्र को।

अमन्दं –परिपूर्णता से युक्त।

सत्यधाम स्वरूप, अनन्त बलधारक उस बलावह रुद्र को मैं आचार्य जयरथ प्रणाम करता हूँ, जो इस सारे संसार को, अपनी महिमा से, संपूर्णतया अनुगृहीत करता है।

इस "बलावह" रुद्र के मन्त्राक्षर "थ" का चिन्तन व मनन करने से साधक शिष्य सत्यधाम भागी होता है।

श्रीतन्त्रालोक के उन्नीसवें आह्निक से सम्बद्ध "बलवान्" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "द"–

भवमेद विभव संभव सभेद विभेद बलवन्तम्।
बलवन्तं नौमिविभुं दारुण रूप ग्रहाग्रहतः।।

भवभेदविभव –संसार में परितः दृश्यमान भेद प्रथा के वैभव से,

संभव –उद्भूत।

संभेद विभेद बलवन्तं –विविध द्वैत भावना के आधिक्य से शक्तिशाली बने हुए

बलवन्तं –बलवान् नामक रुद्र को

नौमि –मैं आचार्य जयरथ प्रणाम करता हूँ

दारुण रूप ग्रह आग्रहतः –भयंकर रूप वाले मृत्यु ग्रह के आग्रह से अर्थात् मृत्यु

के विलोडनकारी प्रभाव से। श्रीतन्त्रालोक के प्रस्तुत उन्नीसवें आह्निक के प्रारंभ में "दारूणरूपग्रहाग्रहत" शब्दों को लिखकर आचार्य ने यह सूचित किया है कि आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने प्रस्तुत आह्निक में "सद्यः समुत्क्रान्तिप्रदा दीक्षा" के आधार पर कार्ममल के पूर्णतया नष्ट न होने से मृत्यु के आसन्न शिष्य को महान् कष्ट होता है; वह व्याधियों से ग्रस्त होता है, उसका जीना दूभर होता है, प्राणों का बन्धन जल्दी कटता नहीं अतः इस आशय से कि जीव अपनी नयी पुनर्जन्म की यात्रा शीघ्र आरम्भ करे, तत्त्वपारग गुरु उक्त दीक्षा का विधान करके उस शिष्य को कष्टों से शीघ्र छुटकारा दिलाता है और उसे शिवत्व की प्राप्ति करवाता है।

सांसारिक वैभव तथा इससे समुत्पन्न भेद विभेद विलास को आपकी कृपा शक्ति से देख कर, मैं जयरथ, भयानक महाग्रह के समूल विनाश के लिए बलवान् नामक व्यापक रुद्र को प्रणाम करता हूँ।

श्रीतन्त्रालोक के बीसवें आह्निक से सम्बद्ध "बलदाता" नामक रुद्र की स्तुति तथा उस का मन्त्राक्षर "ध"–

जयतिविभुर्बलदाता मूढजनाश्वासदायि ये न वपुः।
बहिराद्यन्तवदपि मध्यशून्यमुल्लासितं सततम्।।

मूढ जनाश्वासदायि –मूर्ख जनों को आश्वास दिलाने वाला। यह बीसवां आह्निक प्रस्तुत ग्रन्थ के मूढ जनाश्वासदायिनी दीक्षा से सम्बद्ध है। यह स्वाभाविक है कि समाज में बहुत से लोग अवश्य शक्तियों को समझने में अक्षम हैं। उन्हें आश्वासन देने के लिए कुछ ऐसे प्रयोगकिये जाते हैं जिन्हें देखकर गुरु में या प्रयोग कर्ता में तथा अदृश्य शक्तियों पर भी विश्वास हो जाता है, जिन्हें देखकर मन में बात जम जाती है। इसीलिए मंगल श्लोक में आचार्य ने मूढ जनों को भी प्रभावित करने वाले अपने अभीष्ट देव की प्रार्थना की है।

बलदाता –बल प्रदान करने वाला रुद्र।

आद्यन्तवदपि –आदि और अन्त की तरह भी

उल्लासितं –उज्ज्वल है।

मूर्ख जनों को आश्वासन दिलाने वाला, व्यापक बलदाता रुद्र विजयशील हो जिसका स्वरूप मध्य में शून्य, बाहिर आदि और अन्त की तरह निरन्तर रूप से उज्ज्वल है।

श्रीतन्त्रालोक के इक्कीसवें आह्निक से सम्बद्ध "बलेश्वर" नामक रुद्र की स्तुति

तथा उसका मन्त्राक्षर "न"–

भेदप्रथाविलापन बलेश्वरं तं बलेश्वरं वन्दे।
यः सकला कलयोरपि मितात्मताया निषेधमादध्यात्।।

सकला कल –शिव को नवात्मा के रूप में शास्त्रों में मान्यता प्रदान की है। उनमें निष्कल और सकल उनके प्रथम दो रूप हैं। अथवा

"अकलौ सकलश्चेति शिवस्यैच विभूतयः"

अकलौ –प्रलयाकल और विज्ञानाकल, तथा सकल ये तीन प्रकार के प्रमाता है। ये सारे शिव की ही विभूतियां हैं।

विज्ञानाकल –ये वे प्रमाता हैं जो कर्तृताशून्य शुद्ध प्रकाशात्मा होते हैं। ये माया तत्त्व से ऊपर शुद्ध विद्या से नीचे होते हैं।

प्रलयाकल –ये प्रमाता माया तत्त्व में प्रतिष्ठित होते हैं। शुद्ध बोध से वंचित होते हैं।

सकल प्रमाता –अवर वर्ग के प्रमाता हैं। इन्हें अपने सत्य स्वरूप का कुछ भी मान नहीं होता है। सारे जीव जो द्वैत भाव से रंजित है सकल प्रमाता भाव में आते हैं। ये आणवमल, मायीयमल और कार्ममल से आवृत होते हैं।

भेदप्रथाविलापन –मायीयमल जो भेदप्रथा को जन्म देता है तथा कार्ममल का भी उद्भावक है। यह बलेश्वर नामक रुद्र उसे समूल ध्वस्त कर देता है।

दो बार इसमें बलेश्वर का प्रयोग हुआ है। एक का अर्थ है शक्तिशाली, दूसरे का अर्थ है उपास्य देव बलेश्वर रुद्र।

मितात्मतायाः –परिमित भाव को।

मैं आचार्य जयरथ, भेद प्रथा के मार्ग को ध्वस्त करने में सबल, शक्तिशाली बलेश्वर रुद्र की वन्दना करता हूँ जो सकल आदि प्रमाताओं की मिति को शमन करने में समर्थ है॥

यह ध्यान देने योग्य है कि प्रथम आह्निक में महानन्द का ध्यान है। द्वितीय आह्निक से चौदहवें आह्निक तक बारह आह्निक ऐसे हैं जिनमें उपास्य देव के नामों में "जय" शब्द को आगे रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री जयरथ ने अपने नाम के प्रथम दो वर्ण "ज" और "य" इन उपास्य देवों के आगे रखकर अपनी स्तुति की प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया है। चौदहवें आह्निक से लेकर इक्कीसवें आह्निक तक के आठ आह्निकों में "बल" शब्दल का प्रयोग उपास्य देव के आगे किया है॥

पद्धतिः – प्राचीन तन्त्रयुग के दौर में अलग-अलग संप्रदायों के साथ सम्बन्धित आगम-स्त्रोतों में अलग-अलग गुरुजनों के द्वारा निर्धारित किए हुए इतिकर्तव्यताओं के क्रमों को पद्धतियां कहते थे। वे छोटी-छोटी हस्तलिखित पुस्तिकायों के रूप में लिखी जाती थी। ऐसी प्राचीन साम्प्रदायिक पद्धतियों की मातृकाएं (MSS) आज भी देश के अनगिणत पुस्तकालयों में सुरक्षित रखी गई हैं।

अनुत्तरषडर्धार्थक्रम – इतने बड़े विशालकाय समस्त पद का अर्थ इस प्रकार है–"**अनुत्तर**= सर्वोत्कृष्ट **षट्-अर्ध**= त्रिकशास्त्र का अर्थक्रम। आचार्य जयरथ ने अपनी तंत्रालोक की टीका में इस शब्द का अर्थ 'अनुत्तरत्रिकार्थ' लिखा है, शायद उन दिनों में त्रिकप्रक्रिया का यह भी नामान्तर रहा होगा।

चुखुलक– ख्यातिप्राप्त सिद्ध भगवान अभिनवगुप्तपाद के पिताश्री का नाम सिंहगुप्त या नरसिंहगुप्त था। अभिनव के ही निजी कथनानुसार वे भी अपने युग के प्रकाण्ड शास्त्रमर्मज्ञ एवं सिद्ध पुरुष थे। उन्हीं को तात्कालीन जनसमाज विशेष आदर एवं प्रेम की भावना से 'चुखुलक' कहते थे।

विप्रलम्भक– प्राचीन काल में कई धोखेबाज सिद्धगुरु होने का ढकोसला करके लोगों के साथ असत्-व्यवहार करते रहते थे, उनको विप्रलम्भक कहते थे।

अर्वाक्दृक्– नौसिखिया विचारक जिसने अभी प्राचीन दार्शनिक विचारों और प्राचीन सिद्धगुरुओं की गहन रचनाओं का पूरा अध्ययन न किया हो।

पातञ्जल– पतञ्जलि नामक सुदूर प्राचीन काल के प्रसिद्ध आचार्य के द्वारा विरचित योगशास्त्र।

मलविजृम्भित– आणव, मायीय एवं कार्म इन तीनों मलों का एक साथ ही अति दुर्भेद्य प्रसार।

स्वरूपस्वातन्त्र्य– शैवमान्यता यह है कि उल्लिखित मलविजृम्भित भी प्रकाश पर ही आधारित होने के कारण विस्तार को प्राप्त करता है अतः यह भी शिव स्वरूप से भिन्न नहीं है।

अनपह्नवनीय– जिस पदार्थ का अपलाप न हो सके अर्थात् जिसको झुठलाया न जा सके उसको अनपह्नवनीय कहते हैं।

हेतुवाद– अनुमान मे प्रमेय-पदार्थों की सिद्धि करने की क्रिया को हेतुवाद कहते हैं। परन्तु हेतुवाद सदा नास्तिकता पर आधारित होने के कारण कुतर्क समझा जाता है।

शासन– प्राचीन काल में सिद्ध गुरुओं की देशनाओं (उपदेशों) को शासन कहते थे।

दृक्– किसी भी प्रकार के ज्ञान की पराकाष्ठा को दृक् कहते हैं।

माता– सर्वस्वतन्त्र परमशिव प्रमाता को माता कहते हैं।

मातृक्लृप्त– सर्वोत्कृष्ट प्रमाता परमशिव के द्वारा निजी इच्छाशक्ति से स्वयं स्वीकारी हुई भेदरूपता।

स्वाभासमानता– परबोध की स्वयं प्रकाशमानता को स्वाभासमानता कहते हैं। पर प्रकाशन के साथ-साथ स्वरूपप्रकाशन भी स्वाभासमानता कही जाती है।

तत्त्वग्राम– संस्कृत भाषा में किन्हीं पदार्थों (प्रमेय पदार्थों) के समूहों को ग्राम कहते हैं– उदाहरणार्थ तत्त्व-ग्राम-तत्त्वों का अटाला, गुणग्राम-गुणों का समूह इत्यादि। ग्राम को दूसरे शब्दों में 'सामूह्य' भी कहा जाता है।

अपर्युदस्तवृत्तिः– ऐसा साधक जिसकी मानसिक वृत्तियों में किसी प्रकार की क्षीणता न आई हो।

पर्यनुयोग– किसी विषय या विचारधारा का खंडन मंडन करने के हेतु तत्संबन्धी पूछ-ताछ।

न्याय-निर्माण-वेधा– न्यायसूत्र नामक न्यायशास्त्र की रचना करने वाला प्रसिद्ध नैयायिक अक्षपाद।

रोहण– प्राचीन काल में प्रसिद्ध कोई रत्नों का पहाड़। "रोहणलाभे रत्नसंपद इव"। यह एक लोकोक्ति बन गई है कि जिस भाग्यवान को ईश्वर की इच्छा से रोहण का अधिपत्य ही मिल जाए उसको फिर दूसरे रत्नों की संपदाएँ प्राप्त करने का कौन सा लाभ है। तात्पर्य यह कि जिसके अंतस् में परम ज्योतिर्मयता का आलोक फैल चुका हो, उसको फिर और क्या चाहिए ?

अध्यवसा– यह परमेश्वर की अनन्त शक्तियों में से एक है। यह शक्ति बुद्धि व्यापार के रूपवाले अध्यवसान (निश्चयात्मकता) का विमर्श करती रहती है। तात्पर्य यह कि भात अर्थात् पूर्वानुभूत ज्ञानरूपता और भासमान अर्थात् वर्तमानकालिक ज्ञानरूपता का अनुसन्धान करती हुई 'सोऽहम्' रूप में विमर्श करती रहती है। यह शक्ति भी स्वरूपतः अहं रूपिणी एवं अवच्छेदों से रहित है।

आचिक्रमिषा– किसी स्थानविशेष को आक्रान्त करने की इच्छा– **'आक्रान्तुम् इच्छा=** आचिक्रमिषा।

तित्यक्षा– किसी पदार्थविशेष को छोड़ने की इच्छा
– **'त्यक्तुम् इच्छा=** तित्यक्षा।

विनेयानां गुरुस्त्राता पालकः, परमः शिवः।
यस्य चिन्तनमात्रेण सर्वं दुखं विनश्यति।।
देवेभ्योऽपि गरीयांसं शान्तात्मानं दयार्णवम्।
ईश्वरं सर्वजगतां वन्देऽहं वीरपुङ्गवम्।।

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00
Price Per Copy : Rs.25.00
Overseas Subscription : US$25.00

All correspondence & subsciption must be sent to the Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Phone : 6943307

कथामृत
गुरुदेव लक्ष्मण जी महाराज का

डेढ़ सदी पहले की बात है श्री नगर में रहते थे
नाम था उनका नारायण और दास भी साथ लगाते थे।
जात से पंडित सारस्वत और गोत्र से रैना कहते थे
जैसे उनका नाम था वैसे काम भी कर दिखलाते थे॥
हाउस बोट के व्यापारी थे और थे खुद ही उत्पादक
सिरी नगर में नाम था उनका इसमें नहीं ज़रा भी शक।
सन् उन्नीस सौ सात मई में घर में चहल पहल आई
चाँद से बेटे की पैदाइश घर में बहुत खुशियाँ लाई॥
अरिणी माल की खुशियों का कोई नहीं था अन्दाज़ा
बहुत समय के पीछे मन्नत से बेटा जो अब पाया था।
उनके कुल के गुरु थे जो शुभ नाम था उनका स्वामीराम
मात-पिता ने पूछा गुरु से लक्ष्मण धरा पूत का नाम॥
चिकने चिकने पात हों उसके होनहार बिरवा जो हो
सारे जग में मिसिल है ये और कही नहीं है राय दो।
पाँच वर्ष का था यह बालक करता था दृढ़ योगाभ्यास
मार चौकड़ी बड़ी देर तक रोके रखता अपना स्वास॥
खेल भी खेला करता था तो मिट्टी का शिवलिंग बना
बड़ी देर तक आँख बन्द कर निर्निमेष होता आभास।
एक दफा था इसी सिल सिले में सर में चक्कर आया
गुरु राम को पता चला तो सर पर मक्खन मलवाया॥
और कहा पिछले जन्मों में हुआ यह कोई योग भ्रष्ट
जिसके कारण हो जाता है बालक को इसतौर से कष्ट।
नौ दस साल की उमर हुई तो यज्ञोपवीत था पहनाया
ब्राह्मण का कर्तव्य है क्या विस्तार से उसको समझाया॥

आठवीं कक्षा में थे जब वे कसरत की घंटी आई
लक्ष्मण ने कसरत के बदले खूब समाधि दिखलाई।
विश्राम प्रहर में कुछ और भी बच्चे कसरत से थे बाज़ रहे
गुस्से में टीचर ने पच्चीस बैंत लखन को मार दिये॥
पर जब टीचर घर पहुंचा तो चढ़ गया उसको तो तेज बुखार
पच्चीस दिन तक ना उतरा वह जिससे हुआ गुरु लाचार।
जब स्कूल में आया तो लक्ष्मण लाल से ली माफी
हुआ खेद मानली बैंत मारने की टीचर ने थी गलती॥
उन्नीस सौ अठारह में कलकत्ते का नारायण को सफ़र पड़ा
लक्ष्मण बालक साथ गया उसको था सफ़र का चश्का।
भीड़ के कारण स्त्रियों के डिब्बे में पाया जब रिक्त स्थान
स्त्रियों को बुरा लगा और भर दिये जा एस. एम. के कान॥
कहा नारायण को एस. एम. ने झटपट बदलो यह डिब्बा
लक्ष्मण बालक पड़ा नजर चुपचाप समाधि में बैठा।
नारायण ने कहा कि जब ये उठेगा तब जा बदलूंगा
कहा यह उसने बदले डिब्बा मैं खुद पास ही ठहरूंगा॥
कई स्टेशन गुजर गए तब बालक उठा समाधि से
वहीं पर बैठा वह तब तक फर्ज निभाया एस. एम. ने।
देख समाधि बालक की डिब्बे में सारे हुए हैरान
एस. एम. ने जा कहा पिता से लड़का है यह बड़ा महान्॥
पिता के कारोबार में शामिल होकर मदद लगे करने
देख के बेटे की दिलचस्पी पिता लगे पीछे हटने।
कारोबार के चक्कर में स्कूल भी जाना छोड़ दिया
और बैठ घर पर ही था संस्कृत पढ़ने पर ध्यान दिया॥
इक दिन फिर सारा ही कारोबार था उसको सौंप दिया
दुनिया की कामों से जैसे बाप था अब बेफिक्र हुआ।
पर रूहानी कामों वाला क्या जाने दुनिया के काम

फिर से बाप ने आगे बढ़कर कारोबार लिया था थाम॥
तेरह साल की उम्र से ही माँ बाप ने व्याह पर जोर दिया
पर लड़के ने बार बार ही शादी से इन्कार किया।
लक्ष्मण जी का मन अब कारोबार से बिल्कुल उखड़ गया
बाईस साल की उमर थी उनकी जब घर बार को छोड़ दिया॥
जब ढूंढा तो बैठे पाये साधु गंगा के गाँव में
दर्शन करने लोग थे आये एक पेड़ की छाँव में।
पिता ने कोशिश बहुत की वापिस घर बेटे को लाने की
पर वह आखिर हार गए बेटे ने की ना हां जाने की॥
एक आश्रम पास ही बस्ती मारबल अन्दर बनवाया
और कहा लक्ष्मण को इसमें करो अकेले ही पूजा।
एक दूसरा भी घर उसके पिता ने आकर बनवाया
ईश्वर पर्वत पर इसीलिए था ईश्वर आश्रम कहलाया॥
यहाँ बैठ महताब काक गुरुदेव से थी विद्या पाई
बरस लगे सन्तालीस इसमें संस्कृत भाषा भी खूब पढ़ी।
गुह्यशास्त्रों का सार पंडित राजदान महेश्वर से सीखा
व्याकरण तर्कशास्त्र और तन्त्रालोक भी हृदयंगम किया॥
कई और भी ग्रन्थ पढ़े जिसमें लग गये साल आठ
पराविद्या की दौलत से लक्ष्मण जी हो गए माला माल।
परंब्रह्म के तत्त्व की विद्या महर्षि रमन से प्राप्त की
सारे भारतवर्ष में उनकी उस समय थी धूम बड़ी॥
इसकी खातिर उन्हें था जाना पड़ा दूर तमिलनाडू
दृष्टि पथ का हासिल कर लिया था उनसे जाकर जादू।
अभिनव गुप्त की गीता का सन् तैतीस में अनुवाद किया
भक्त जनों की खातिर फिर इस पुस्तक को था छपवाया॥
उन्नीस सौ पचास में आई शैव शास्त्र पढ़ने सिलबर्न
लक्ष्मण जी की शिष्य बनीं और शिक्षा पाकर हो गई धन्य।

उन्होंने शैव शास्त्र का था फ्रैंच में जा अनुवाद किया
ज्ञान मिला गुरुदेव से जो वह हम वतनों में बाँट दिया॥
कहते हैं कि श्रीनगर में एक बड़ा भूचाल आया
श्रीराम के बीबी बच्चे, सारे उसीमें ढ़ेर हुए।
केवल राम बचा तो नारायण ने उसे दिया था घर
गुरुदेव का साया, सदा छाया रहे उनके ही सर पर॥
गोपी तीर्थ स्थान पहाड़ों पर डेरा था बनवाया
लक्ष्मण जी ने वहाँ साधना ऋरने का था यत्न किया।
अपने चेले मोहन लाल और सारिका जी को साथ लिया
तीनों ने ही पहुंच वहाँ पर तप करना आरम्भ किया॥
इक दिन शाम को सारिका देवी खाने की थाली लाईं
थाली लेकर गुरुदेव ने तप की बा़वत बातें कीं।
सात बजे थे शाम के देवी सारिका बैठी तप करने
शुरू हुए आँखों से आँसू गिरने और नहीं थमे॥
अगली सुबह के चार बजे तक लगातार गिरते ही रहे
ये दृश्य देख के भाई मोहन लाल थे सहप गए।
आँखों में आ गई सफेदी और बदन में कमजोरी
सारिका जी आनन्द में थी पर हो गई जैसे पागल सी॥
गुरुदेव थे भाप गए के ज्ञान का तूफ़ान आया है
इसी लिए देवीजी को यह हाल बहुत ही भाया है।
और कहा देवी से मांगों वर जो भी लेना चाहो
मेरे साथ ही रहने का भी ईश्वर से एक वर मांगो॥
लक्ष्मण जी फिर ले गए उसको चश्मे गोपी तीर्थ पर
वहाँ उसको नहलाया था वेदों के पढ़कर शुभ मन्तर।
देवी जी आ गई होश में श्रीनगर की राह पकड़ी
टाँगे में थे तीनों ही जब सारिका लक्ष्मण से झगड़ी॥
झगड़ा था इस बात का अब आया ज्ञान कहाँ गया ?

जन्म जन्म में तप करने से मुश्किल से था हाथ लगा।
लक्ष्मण जी पर नज़र पड़ी वह जटा जूट धरे भंगी
गले में सांपों की माला सर पर थी गंगा संगी॥
देवी जी खामोश हो गई जब देखा विस्मयकर रूप
और वहाँ से जल्दी ही की घर जाने की दौड़धूप।
घर आकर निढ़ाल हो गईं रोग समझ में ना आया
सारिका जी को मात पिता ने डॉक्टरों को दिखलाया॥
घबरा गये विलोकि हाल उनका श्रीगुरु को बतलाया
कहा यह उनको नजर आ रहा वक्त आखिरी है आया।
गुरुदेव ने रस अंगूरों के बूटी साथ रगड़ के दी
पीते ही बूटी को देवी जी की जान में जान आई॥
लेकिन यह बीमारी जाते जाते लग गए बहु चौबीस मास
गुरुदेव की दवा भी आते आते ही आई थी रास।
गुरुदेव ने राज़ बीमारी का देवी जी को समझाया
देने का इकबार किया फिर ज्ञान के जादू का वादा॥
इस वादे को याद रखा और श्रीगुरु ने दिया निभा
जीवन के आखिरी समय में ज्ञान का जल्वा दिया दिखा।
ईश्वर पर्वत के दामन में गुरु ने घर था बनवाया
और सामने उसके घर था सारिका जी का बन पाया॥
दोनों के माँ बाप आ गए खूब रही गहमा गहमी
गुरुदेव और सारिका जी का बना आश्रम फिर गृहस्थी।
गुरुदेव तंग आ गए इससे और गए तन्हाई में
षट् चक्कर चल गए थे उनके ज़ोर आया दानाई में॥
नया आश्रम लक्ष्मण जी ने गुप्त गंगा में बनवाया
बेच दिए पहले दोनों जब ध्यान नए का था आया।
ईश्वर आश्रम नाम रखा दिन रात तपस्या करते थे
दर्शन करने की इच्छा से रोज़ भक्त जन आते थे॥

सारिका जी और प्रभा ने भी अपना अपना घर बेच दिया
एक एक कमरा दोनों ने ही नए आश्रम में पाया।
सारिका जी फिर चली गईं परलोक छोड़ यह महाधाम
सभी भक्त जन याद हैं करते और करेंगे लेकर नाम॥
उन्नीस सौ नब्बे और एक में गुरु ने प्राप्त किया निर्वाण
लेकिन वादा किया करते रहेंगे सारी दुनिया का शुभकाम।
गुरु गद्दी की बागडोर को प्रभा देवी ने लिया है थाम
ईश्वर सेवा में रहती हैं लीन वह हरदम सुबह शाम॥
एक आश्रम दिल्ली में है डी. एल. एफ. में भी बनवाया
दोनों स्थानों के लोगों को भी है ज्ञान का रास्ता दिखलाया।
लक्ष्मण जी की याद प्रभा जी करवाती है भक्तों को
सब को दिखाती है वह राह गुरुदेव दिखला गए हैं जो॥
जन्म-दिवस की रस्म मनाने आए हैं गुरु लक्ष्मण की
मेहर भरने आया है लेने इस ज्ञान उदधि में इक डुबकी॥

'मेहर' भण्डारी
360 सैक्टर 19, फरीदाबाद.
दूरभाष-5268853

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष वास्तव में क्या है ?

स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

आन्तरिक चन्द्रमा अपान-वायु बन कर 'बाह्य-द्वादशान्त' से भीतर की ओर संचार करते-करते पंद्रह तुटि रूपी शुक्लपक्ष के पंद्रह दिनों का उल्लङ्घन करता। फिर हृदयाकाश में स्थित और तुट्यर्धांश से सीमित 'अन्तर्द्वादशान्त' पर बाह्य-चन्द्रमा की नाईं परिपूर्णकला से संयुक्त हो कर आन्तरिक पूर्णिमा के अमृत का आस्वाद लेता है। इसी तरह परिपूर्णता को प्राप्त हुआ भी चन्द्रमा प्राण-रूप बन कर 'अन्तर्द्वादशान्त' से प्रसारित होते हुए पंद्रह तुटि-रूपी कृष्णपक्ष में क्रम से क्षीण होता है और क्षीण होकर 'बाह्यद्वादशान्त' में स्थित तुट्यर्धांश रूपी आन्तरिक अमावस्या पर अमाकला का आस्वाद लेता है। इसी प्रकार आन्तरिक पूर्णिमा तथा आन्तरिक अमावस्या का आस्वाद लेते हुए योगी-जन वास्तविक गृहपति बन कर सदा 'आत्मयाग' का अनुभव किया करते हैं।

प्राण और अपान के, हृदयाकाश से बाह्य-द्वादशान्त तक, चलने में ३६ अंगुलों के समान समय लगता है। सवा दो अंगुलों के समान समय को तुटि कहते हैं। हृदयाकाश और बाह्य-द्वादशान्त पर अर्थात् संधियों पर स्वाभाविक रूप से ज़रा ठहरने में आधी आधी तुटि लगती है। इस प्रकार प्राणापान को हृदयाकाश से बाह्य-द्वादशान्त तक संचार करने में पंद्रह तुटियों का समय लगता है और यही पंद्रह तुटियां पक्ष के पंद्रह दिनों के समान मानी गई हैं। प्राण के हृदयाकाश से बाह्य-द्वादशान्त तक चलने के समय (अर्थात् पंद्रह तुटियों) को कृष्णपक्ष के पंद्रह दिनों के समान और अपान के बाह्य-द्वादशान्त से हृदयाकाश तक पहुँचने के समय (अर्थात् पंद्रह तुटियों) को शुक्ल-पक्ष के पंद्रह दिनों के समान माना गया है।

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:
Ishber Nishat,
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir) - 190 021
Tel. : 0194-461657

Jammu Ashram:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel. : 0191-553179, 555755

Delhi Ashram:
R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi - 110 004
Tel. : 011-6958308, 6943307

No : IAT/860-61/Adm/2001

Place : Jammu
Date : 31st August, 2001

Resolution

The members of the Trust and the devotees of Gurudev Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj met in the Ashram premises today to condole the death of Shri Triloki Nath Dhar, a close relation of Gurudev and an ardent devotee of Him, at Muradabad on 29th of August, 2001.

The Assembly prayed to Swami Ji Maharaj to shower Bliss to the departed soul, and give enough courage to the bereaved family to bear the loss.

May his soul live in peace in the region of light and truth in which it has stepped in. The sentiments be conveyed to the concerned.

sd/-
B.N. Kaul
Trustee
For and on behalf of Ishwar
Ashram Trust

Copy to : Mrs. Raj Laxmi Dhar, Dr. Lalit Dhar, and Shri Ashwani Dhar, and Tita Ji Dhar (Raina). 3-D/V/IV A, Bhel, Ranipore, Haridwar.

With best compliments

Mehta Print-Arts Pvt. Ltd.

VANDANA BUSINESS FORMS

Vandana Printing Works Pvt. Ltd.

(RBI Approved)

C-150, Naraina Industrial Area, Phase-I, New Delhi - 110 028.

Tel. : 5793162 • 5795515 • 5795525 Fax : 5793922